प्राक्कथन

श्रीमज्जैनाचार्य पूज्यश्री जवाहरलालजी म. सा के मोरवी (सौराष्ट्र) मे हुए प्रवचनो मे से कतिपय विशिष्ट प्रवचनो के आधार पर सपादित करके यह 'मोरवी के व्याख्यान' नामक इक्कीसवी किरण का द्वितीय सस्करण पाठकों के समक्ष प्रस्तुत कर रहे हैं।

यद्यपि श्री महावीर जैन ज्ञानोदय सोसायटी राजकोट की तरफ से प्रकाशित जवाहर व्याख्यान सग्रह मे मोरवी के प्रवचन गुजराती भाषा मे प्रगट हुए हैं, किन्तु इस किरण में जिन प्रवचनों का सग्रह है, वे उनसे अतिरिक्त हैं और अभी तक कहीं भी प्रकाशित नहीं हुए है। यह प्रवचन अत्यन्त बोधप्रद तथा सर्वजनोपयोगी हैं। इनका प्रकाशन सर्वसाधारण जनता के लिए उपयोगी होगा, ऐसी आशा है।

पूज्य जवाहराचार्य के प्रवचन किसी समय-विशेष की समस्याओं का समाधान नहीं करते हैं किन्तु सर्वकालिक समस्याओ का समाधान करते हुए मानवीय जीवन की महत्ता और कर्तव्य का बोध कराते हैं। उनमें मानव-जीवन के आदर्शों को सुरक्षित रखने और तदनुकूल आचरण करने का आह्वान किया जाता है। इसलिये मनुष्य प्रत्येक स्थिति मे अपने लक्ष्य को निर्धारित करने, प्राप्त करने के लिये अग्रसर होने लगता है। यही कारण है कि सत्साहित्य के पठन-पाठन के प्रेमी सज्जन आचार्य श्रीजी के प्रवचनों को पढ़ने के लिये उत्सुक रहते हैं और अपने पारिवारिकजनों,

प्राक्कथन

श्रीमज्जैनाचार्य पूज्यश्री जवाहरलालजी म. सा के मोरवी (सौराष्ट्र) मे हुए प्रवचनो मे से कतिपय विशिष्ट प्रवचनो के आधार पर सपादित करके यह 'मोरवी के व्याख्यान' नामक इक्कीसवी किरण का द्वितीय सस्करण पाठकों के समक्ष प्रस्तुत कर रहे हैं।

यद्यपि श्री महावीर जैन ज्ञानोदय सोसायटी राजकोट की तरफ से प्रकाशित जवाहर व्याख्यान सग्रह मे मोरवी के प्रवचन गुजराती भाषा मे प्रगट हुए हैं, किन्तु इस किरण में जिन प्रवचनों का सग्रह है, वे उनसे अतिरिक्त हैं और अभी तक कहीं भी प्रकाशित नहीं हुए है। यह प्रवचन अत्यन्त बोधप्रद तथा सर्वजनोपयोगी हैं। इनका प्रकाशन सर्वसाधारण जनता के लिए उपयोगी होगा, ऐसी आशा है।

पूज्य जवाहराचार्य के प्रवचन किसी समय-विशेष की समस्याओं का समाधान नहीं करते हैं किन्तु सर्वकालिक समस्याओ का समाधान करते हुए मानवीय जीवन की महत्ता और कर्तव्य का बोध कराते हैं। उनमें मानव-जीवन के आदर्शों को सुरक्षित रखने और तदनुकूल आचरण करने का आह्वान किया जाता है। इसलिये मनुष्य प्रत्येक स्थिति मे अपने लक्ष्य को निर्धारित करने, प्राप्त करने के लिये अग्रसर होने लगता है। यही कारण है कि सत्साहित्य के पठन-पाठन के प्रेमी सज्जन आचार्य श्रीजी के प्रवचनों को पढ़ने के लिये उत्सुक रहते हैं और अपने पारिवारिकजनों,

मोरवी के व्याख्यान

मोरवी के व्याख्यान

१ : दो बहिनें-सम्पत्ति और विपत्ति

श्रीजिन मोहनगारो छे, जीवन-प्राण हमारो छे।

यह भगवान् अरिष्टनेमि की प्रार्थना है। भगवान् अरिष्टनेमि का चरित्र भारतीय साहित्य मे अत्यन्त उच्च-कोटि का है। ऐसा चरित्र दूसरा मेरे देखने मे नही आया। यद्यपि भीष्म का चरित्र भी बहुत उज्जवल और आदर्श है लेकिन भगवान् अरिष्टनेमि के चरित के साथ उसकी समानता नही हो सकती। श्री अरिष्टनेमि का चरित्र कुछ असाधारण बोधदायक है। भीष्म ने पिता की सेवा के लिए ही ब्रह्मचर्य स्वीकार किया था लेकिन भगवान् अरिष्टनेमि ने पशु पक्षियो को दया से प्रेरित होकर ब्रह्मचर्य अगीकार किया था और यहाँ तक कि संसार का भी त्याग कर दिया था। भगवान् अरिष्टनेमि के चरित्र को भलीभाति देखा जाये और उस पर मनन किया जाये तो विदित होगा कि उन्होने यादव कुल में जन्म लेकर कैसा असाधारण कार्य किया था।

जिस समय भगवान् अरिष्टनेमि का जन्म हुआ, उस समय यादवो मे महान् हिसा फैली हुई थी। भगवान् अरिष्टनेमि ने उस हिसा को मिटाने के लिए ब्रह्मचर्य अगीकार किया और ससार का त्याग किया।

१ : दो बहिनें—सम्पत्ति और विपत्ति

श्रीजिन मोहनगारो छे, जीवन-प्राण हमारो छे।

यह भगवान् अरिष्टनेमि की प्रार्थना है। भगवान् अरिष्टनेमि का चरित्र भारतीय साहित्य मे अत्यन्त उच्च-कोटि का है। ऐसा चरित्र दूसरा मेरे देखने मे नही आया। यद्यपि भीष्म का चरित्र भी बहुत उज्जवल और आदर्श है लेकिन भगवान् अरिष्टनेमि के चरित के साथ उसकी समानता नही हो सकती। श्री अरिष्टनेमि का चरित्र कुछ असाधारण बोधदायक है। भीष्म ने पिता की सेवा के लिए ही ब्रह्मचर्य स्वीकार किया था लेकिन भगवान् अरिष्टनेमि ने पशु पक्षियो की दया से प्रेरित होकर ब्रह्मचर्य अगीकार किया था और यहाँ तक कि संसार का भी त्याग कर दिया था। भगवान् अरिष्टनेमि के चरित्र को भलीभाति देखा जाये और उस पर मनन किया जाये तो विदित होगा कि उन्होने यादव कुल में जन्म लेकर कैसा असाधारण कार्य किया था।

जिस समय भगवान् अरिष्टनेमि का जन्म हुआ, उस समय यादवो मे महान् हिंसा फैली हुई थी। भगवान् अरिष्टनेमि ने उस हिंसा को मिटाने के लिए ब्रह्मचर्य अगीकार किया और ससार का त्याग किया।

हो, हमें विषयसुख प्राप्त होना चाहिए। इस प्रकार की मानसिक स्थिति मे अनुकम्पा नही होती। उस समय यादवो की स्थिति ऐसी हो थी। वे लोग विषयलोलुप हो रहे थे और इस कारण पशु-पक्षियो की घोर हिंसा कर डालते थे। इस हिंसा को रोकने के लिए भगवान् ने विवाह का प्रपच रचे जाने मे बाधा नही पहुचाई।

कई लोग जैनधर्म का ठीक ठीक स्वरूप नही समझते। अतएव वह सोचने लगते हैं कि सब जीव एकान्त समान हैं। यह समझकर वे वनस्पति और पानी के छोटे जीवो की रक्षा करने मे तत्पर हो जाते है मगर बड़े जीवों की उपेक्षा कर देते हैं। वे केवल छोटे जीवो की ही रक्षा करने मे धर्म की इतिश्री कर डालते हैं। ऐसे लोगो को भगवान् अरिष्टनेमि के चरित्र से शिक्षा लेनी चाहिए।

भगवान् अरिष्टनेमि आरभ से ही तीन ज्ञान के धनी थे वे इस बात को भलीभाँति जानते थे कि अमुक वस्तु मे जीव है और अमुक मे कम जीव हैं या ज्यादा जीव हैं। फिर भी उन्होने विवाह रचाना स्वीकार कर लिया था और जब विवाह सबधी स्नान आदि की विधि की गई तो उन्होने कुछ नही कहा। इसी प्रकार जब बारात सजाई गई और हाथी के हौदे पर बैठ कर उग्रसेन के यहाँ तोरण-द्वारपर जाने लगे तब भी कुछ नही बोले। लेकिन वहाँ पहुच कर उन्होने पशु-पक्षियो की रक्षा की। अब विचारना चाहिए कि क्या भगवान् को स्नान करने के पानी मे जीव होने का ज्ञान नही था? बारात के चलने से मार्ग के जीवो के मरने की बात उन्हे मालूम नही थी? फिर

हो, हमें विषयसुख प्राप्त होना चाहिए। इस प्रकार की मानसिक स्थिति मे अनुकम्पा नही होती। उस समय यादवो की स्थिति ऐसी ही थी। वे लोग विषयलोलुप हो रहे थे और इस कारण पशु-पक्षियो की घोर हिंसा कर डालते थे। इस हिंसा को रोकने के लिए भगवान् ने विवाह का प्रपच रचे जाने मे बाधा नही पहुचाई।

कई लोग जैनधर्म का ठीक ठीक स्वरूप नही समझते। अतएव वह सोचने लगते हैं कि सब जीव एकान्त समान हैं। यह समझकर वे वनस्पति और पानी के छोटे जीवो की रक्षा करने मे तत्पर हो जाते है मगर बड़े जीवों की उपेक्षा कर देते हैं। वे केवल छोटे जीवो की ही रक्षा करने मे धर्म की इतिश्री कर डालते हैं। ऐसे लोगो को भगवान् अरिष्टनेमि के चरित्र से शिक्षा लेनी चाहिए।

भगवान् अरिष्टनेमि आरभ से ही तीन ज्ञान के धनी थे वे इस बात को भलीभाँति जानते थे कि अमुक वस्तु मे जीव है और अमुक मे कम जीव हैं या ज्यादा जीव हैं। फिर भी उन्होने विवाह रचाना स्वीकार कर लिया था और जब विवाह सबधी स्नान आदि की विधि की गई तो उन्होने कुछ नही कहा। इसी प्रकार जब बारात सजाई गई और हाथी के हौदे पर बैठ कर उग्रसेन के यहाँ तोरण-द्वारपर जाने लगे तब भी कुछ नही बोले। लेकिन वहाँ पहुच कर उन्होने पशु-पक्षियो की रक्षा की। अब विचारना चाहिए कि क्या भगवान् को स्नान करने के पानी मे जीव होने का ज्ञान नही था? बारात के चलने से मार्ग के जीवो के मरने की बात उन्हे मालूम नही थी? फिर

अह सारही तओ भणइ एए भद्दा उ पाणिणो।
तुज्झ विवाहकज्जम्मि भोयावेउं बहुजणं ।

सारथी भगवान् से कहता है—यह पशु पक्षी किसी और प्रयोजन से नही लाये गये हैं किन्तु आपके विवाह के लिए ही लाये गये हैं । आपके विवाह मे इनकी दावत दी जायेगी ।

भगवान् जगत् की रक्षा करने के लिए जन्मे थे और वे उन जीवों की हिंसा भी नही कर रहे थे । अतएव वे सोच सकते थे कि जो करेगा सो भोगेगा । इन प्राणियो के मारे जाने का अपराध मेरे सिर नही हो सकता । मगर परमदयालु भगवान् ने ऐसा नही सोचा । उन्होंने विचार किया कि मेरा विवाह न हो तो यह प्राणी क्यो मारे जाएँ !

इस प्रकार विचार कर भगवान् ने सारथी से कहा—यह हिंसा मेरे लिए श्रेयस्कर नही है । इसलिए तू जाकर इन पशु पक्षियो को बधन-मुक्त कर दे ।

सारथी भगवान् की आज्ञा पाते ही चल दिया और बाड़े मे बद पशुओ को मुक्त करके लौट आया । भगवान् ने सतुष्ट होकर अपने शरीर के समस्त आभूषण, मुकुट को छोडकर सारथी को दे दिये ।

सारथी ने कौनसा बड़ा काम किया था कि भगवान् ने मुकुट के सिवाय और सब आभूषण उतार कर उसे दे दिये ? भगवान् के शरीर पर जो आभूषण होगे वे साधारण तो नही रहे होगे ! वे महामहिम यादवकुल के राज-

अह सारही तओ भणइ एए भद्दा उ पाणिणो।
तुज्झ विवाहकज्जम्मि भोयावेउं बहुजणं।

सारथी भगवान् से कहता है—यह पशु पक्षी किसी और प्रयोजन से नही लाये गये हैं किन्तु आपके विवाह के लिए ही लाये गये हैं। आपके विवाह मे इनकी दावत दी जायेगी।

भगवान् जगत् की रक्षा करने के लिए जन्मे थे और वे उन जीवों की हिंसा भी नही कर रहे थे। अतएव वे सोच सकते थे कि जो करेगा सो भोगेगा। इन प्राणियो के मारे जाने का अपराध मेरे सिर नही हो सकता। मगर परमदयालु भगवान् ने ऐसा नही सोचा। उन्होने विचार किया कि मेरा विवाह न हो तो यह प्राणी क्यो मारे जाएँ!

इस प्रकार विचार कर भगवान् ने सारथी से कहा—यह हिंसा मेरे लिए श्रेयस्कर नही है। इसलिए तू जाकर इन पशु पक्षियो को बधन-मुक्त कर दे।

सारथी भगवान् की आज्ञा पाते ही चल दिया और बाड़े मे बद पशुओ को मुक्त करके लौट आया। भगवान् ने सतुष्ट होकर अपने शरीर के समस्त आभूषण, मुकुट को छोडकर सारथी को दे दिये।

सारथी ने कौनसा बड़ा काम किया था कि भगवान् ने मुकुट के सिवाय और सब आभूषण उतार कर उसे दे दिये? भगवान् के शरीर पर जो आभूषण होगे वे साधारण तो नही रहे होगे! वे महामहिम यादवकुल के राज-

से रक्षा होती है, उनमे एक राजा भी है। राजा की सहायता के बिना अहिंसाधर्म का पालन नही किया जा सकता। ससार में क्षुद्र मनुष्य भरे पडे हैं। राजा न हो तो वे धर्मपालन में बहुत बाधा डालें और सर्वसाधारण के जीवन मे कठिनाई पैदा कर दें। गीता में कहा है—

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः।

अर्थात्—श्रेष्ठ पुरुष जैसा आचरण करते है, दूसरे लोग भी वैसा ही आचरण करते है। महापुरुष माने जाने वाले लोग जो बात स्वीकार कर लेते हैं, दूसरे लोग भी सरलता मे स्वय ही वह बात अगीकार कर लेते हैं। इस प्रकार जो काम हमारे उपदेश से नही होता वह महापुरुष के आचरण से अनायास ही हो जाता है। सब के लिए कहा गया है—

महाजनो येन गत. स पन्थाः।

यानी सब तरह के वादविवाद को दूर करके उसी मार्ग पर चलो जिस पर महापुरुष चले हैं। इस प्रकार महापुरुष माने जाने वालो पर ज्यादा जिम्मेदारी है। उन्हे सदा इस बात का ध्यान रखना पडता है कि मैं किस मार्ग पर चल रहा हूं और मुझे किस मार्ग पर चलना चाहिए? राजा की गणना भी महापुरुषो मे है। इस कारण राजा को भी ध्यान रखना चाहिए कि मैं कैसे काम कर रहा हूं और मुझे कैसे काम करने चाहिए?

भगवान् अरिष्टनेमि राजपुरुष थे। वे महाराज समुद्रविजय के पुत्र थे। माता-पिता ने उनसे विवाह करने का

से रक्षा होती है, उनमे एक राजा भी है। राजा की सहायता के बिना अहिंसाधर्म का पालन नही किया जा सकता। ससार में क्षुद्र मनुष्य भरे पडे हैं। राजा न हो तो वे धर्मपालन में बहुत बाधा डालें और सर्वसाधारण के जीवन मे कठिनाई पैदा कर दें। गीता में कहा है—

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः।

अर्थात्—श्रेष्ठ पुरुष जैसा आचरण करते है, दूसरे लोग भी वैसा ही आचरण करते है। महापुरुष माने जाने वाले लोग जो बात स्वीकार कर लेते हैं, दूसरे लोग भी सरलता मे स्वय ही वह बात अगीकार कर लेते हैं। इस प्रकार जो काम हमारे उपदेश से नही होता वह महापुरुष के आचरण से अनायास ही हो जाता है। सब के लिए कहा गया है :—

महाजनो येन गत. स पन्थाः।

यानी सब तरह के वादविवाद को दूर करके उसी मार्ग पर चलो जिस पर महापुरुष चले हैं। इस प्रकार महापुरुष माने जाने वालो पर ज्यादा जिम्मेदारी है। उन्हे सदा इस बात का ध्यान रखना पडता है कि मैं किस मार्ग पर चल रहा हूं और मुझे किस मार्ग पर चलना चाहिए? राजा की गणना भी महापुरुषो मे है। इस कारण राजा को भी ध्यान रखना चाहिए कि मैं कैसे काम कर रहा हूं और मुझे कैसे काम करने चाहिए?

भगवान् अरिष्टनेमि राजपुरुष थे। वे महाराज समुद्रविजय के पुत्र थे। माता-पिता ने उनसे विवाह करने का

गुड़-शक्कर बहुत खाता है, इस कारण इसके शरीर में बीमारी फूट निकली है। बीमारी होने पर भी यह गुड-शक्कर खाना नही छोडता। बाई की बात सुनकर शिक्षक ने कहा—अच्छा, आज तो अवसर नही है। कल इसे लेकर आ जाना

दूसरे दिन वह बाई फिर अपने लडके के साथ शिक्षक के पास गई। गुड और शक्कर अधिक खाने से क्या-क्या हानियाँ होती हैं, यह सब बातें शिक्षक ने उस लडके को भलीभाँति समझाई। लडके ने प्रतिज्ञा की—मैं माता की आज्ञा लिये बिना कभी गुड नही खाऊँगा।

वह बाई शिक्षक से कहने लगी—आपने जो काम आज किया है, वह कल ही कर सकते थे। फिर कल अवसर न होने की बात किस मतलब से कही थी ? शिक्षक ने उत्तर दिया मैंने स्वय गुड खाया था। जब मेरे ही पेट मे गुड था तो इस बालक को उसके त्यागने का उपदेश कैसे दे सकता था ? जब मैंने स्वय गुड़ खाना छोड़ दिया तभी इसे त्यागने का उपदेश दिया है। स्वय आचरण न करके दिये गये उपदेश का प्रभाव नही पड़ता।

इस कथा के आधार पर आप अपने सबध में विचार करें। आपसे प्रश्न किया जाये कि आपको कैसी पत्नी चाहिए ? तो आप सीता जैसी पत्नी की इच्छा करेंगे। किन्तु कभी राम जैसे बनने की भी इच्छा करते हैं ? आप राम जैसे नही बनना चाहते तो पत्नी सीता जैसी कैसे चाहते हो ?

तात्पर्य यह है कि जो दूसरे को तो उपदेश देता है

गुड़-शक्कर बहुत खाता है, इस कारण इसके शरीर में बीमारी फूट निकली है। बीमारी होने पर भी यह गुड-शक्कर खाना नही छोडता। बाई की बात सुनकर शिक्षक ने कहा—अच्छा, आज तो अवसर नही है। कल इसे लेकर आ जाना

दूसरे दिन वह बाई फिर अपने लडके के साथ शिक्षक के पास गई। गुड और शक्कर अधिक खाने से क्या-क्या हानियाँ होती हैं, यह सब बातें शिक्षक ने उस लडके को भलीभाँति समझाई। लडके ने प्रतिज्ञा की—मैं माता की आज्ञा लिये बिना कभी गुड नही खाऊँगा।

वह बाई शिक्षक से कहने लगी—आपने जो काम आज किया है, वह कल ही कर सकते थे। फिर कल अवसर न होने की बात किस मतलब से कही थी ? शिक्षक ने उत्तर दिया मैंने स्वय गुड खाया था। जब मेरे ही पेट मे गुड था तो इस बालक को उसके त्यागने का उपदेश कैसे दे सकता था ? जब मैंने स्वय गुड़ खाना छोड़ दिया तभी इसे त्यागने का उपदेश दिया है। स्वय आचरण न करके दिये गये उपदेश का प्रभाव नही पड़ता।

इस कथा के आधार पर आप अपने सबध में विचार करें। आपसे प्रश्न किया जाये कि आपको कैसी पत्नी चाहिए ? तो आप सीता जैसी पत्नी की इच्छा करेंगे। किन्तु कभी राम जैसे बनने की भी इच्छा करते हैं ? आप राम जैसे नही बनना चाहते तो पत्नी सीता जैसी कैसे चाहते हो ?

तात्पर्य यह है कि जो दूसरे को तो उपदेश देता है

तात्पर्य यह है कि उपदेश देने वाले को चाहिये कि वह पहले अपने आप को अपने उपदेश के अनुरूप बनावे। उसके बाद ही उसका उपदेश प्रभावजनक होगा। स्वय आचरण न करके सिर्फ दूसरो को उपदेश देने वाले उस चाटू के समान हैं जो दाल-शाक आदि में डूबे रहकर भी किसी चीज का स्वाद नही जानते अतएव भगवान् अरिष्टनेमि ने सोचा—मैं दूसरो को ब्रह्मचर्य का उपदेश दूँ और स्वय विवाह करूँ तो मेरे उपदेश का क्या मूल्य होगा ! इस प्रकार जनता के सामने जीता-जागता उदाहरण रखने के लिए भगवान् तोरणद्वार तक पहुचकर लौट आये।

जिस समय दुल्हा बिना विवाह किये लौट रहा हो उस समय बरातियो को कितना खेद होता होगा ? और बराती भी साधारण मनुष्य नही थे। समुद्रविजय और कृष्ण जैसे प्रतिष्ठित राजपुरुषो को उस समय जो खेद हुआ होगा, उसकी कल्पना करना भी कठिन है। उन्होने भगवान् से कहा—आपने जीवो को बधनमुक्त कर दिया सो ठीक है। सारथी को आभूषण दे दिये सो भी ठीक है। लेकिन विवाह किये बिना ही आप वापिस लौट रहे हैं यह बडा अनुचित है। ऐसा करने से हमारी प्रतिष्ठा मे धब्बा लगता है। आप और जीव छुडा सकते हैं। चाहे तो और भी पुरस्कार दे सकते हैं। मगर विवाह किये बिना लौटना उचित नही है।

कृष्ण जैसे महापुरुष भी भगवान् से विवाह किये बिना न लौटने का आग्रह कर रहे थे। ऐसी स्थिति मे भगवान् को क्या करना चाहिए था ? उन्हे सबका कहना

तात्पर्य यह है कि उपदेश देने वाले को चाहिये कि वह पहले अपने आचरण को अपने उपदेश के अनुरूप बनावे । उसके बाद ही उसका उपदेश प्रभावजनक होगा । स्वय आचरण न करके सिर्फ दूसरो को उपदेश देने वाले उस चाटू के समान हैं जो दाल-शाक आदि में डूबे रहकर भी किसी चीज का स्वाद नही जानते अतएव भगवान् अरिष्टनेमि ने सोचा—मैं दूसरो को ब्रह्मचर्य का उपदेश दू और स्वय विवाह करू तो मेरे उपदेश का क्या मूल्य होगा ! इस प्रकार जनता के सामने जीता-जागता उदाहरण रखने के लिए भगवान् तोरणद्वार तक पहुचकर लौट आये ।

जिस समय दुल्हा बिना विवाह किये लौट रहा हो, उस समय बरातियो को कितना खेद होता होगा ? और बराती भी साधारण मनुष्य नही थे । समुद्रविजय और कृष्ण जैसे प्रतिष्ठित राजपुरुषो को उस समय जो खेद हुआ होगा, उसकी कल्पना करना भी कठिन है । उन्होने भगवान् से कहा—आपने जीवो को बधनमुक्त कर दिया सो ठीक है । सारथी को आभूषण दे दिये सो भी ठीक है । लेकिन विवाह किये विना ही आप वापिस लौट रहे हैं यह बडा अनुचित है । ऐसा करने से हमारी प्रतिष्ठा मे धब्बा लगता है । आप और जीव छुडा सकते हैं । चाहे तो और भी पुरस्कार दे सकते हैं । मगर विवाह किये बिना लौटना उचित नही है ।

कृष्ण जैसे महापुरुष भी भगवान् से विवाह किये बिना न लौटने का आग्रह कर रहे थे । ऐसी स्थिति मे भगवान् को क्या करना चाहिए था ? उन्हे सबका कहना

तो नही कहा जा सकता, लेकिन शायद यह कहा होगा कि मैं हठ नही करता हूं। मगर दीन जीवों की दया मुझे अपनी ओर खींच रही है। ऐसी स्थिति मे मुझे किस ओर जाना चाहिए ?

ससार मे बड़े लोगों की दया तो सभी करते हैं लेकिन गरीबो की–जिनका कोई स्वामी नही है, दया करने वाले विरले ही होते हैं। बडो की जो दया की जाती है, वह दया नही, सेवा है। दया तो दुखी की होती है। और दया करने के लिए जो दुखी का चरित्र देखने लगता है वह दयावान् नही है। दयावान् वह है जो दुखी के चरित्र को सुधार देता है।

भगवान् ने सबसे कहा—इन दुखी जीवों की करुणा मेरा हृदय अपनी ओर आकर्षित कर रही है। जगत् में हाय-हाय मची हुई है। उसी को मिटाने के लिए मैं यत्न करना चाहता हू। मैं आपका अपमान नही कर रहा हूं। इस पर भी आप अपना अपमान समझते हैं तो यह आपका भ्रम है।

जो गरीब जीवो की दया करते रहते हैं उनकी ओर सभी का आकर्षण रहता है। मोरवी के महाराजा से–जो यहाँ उपस्थित हैं, मेरी बातचीत हुई तो मालूम हुआ कि आप दोनो का दुख मिटाने के लिए लाखो की सखावत किया करते हैं और लोगो को उसका पता भी नही चलने देते। जिनके अन्तकरण मे ऐसी दया है, उनकी ओर हमारा भी आकर्षण होना स्वाभाविक है। इसी कारण अहमदाबाद के बदले यहाँ चौमासा करना पडा है।

तो नही कहा जा सकता, लेकिन शायद यह कहा होगा कि मैं हठ नही करता हूं। मगर दीन जीवों की दया मुझे अपनी ओर खीच रही है। ऐसी स्थिति मे मुझे किस ओर जाना चाहिए ?

ससार मे बड़े लोगों की दया तो सभी करते हैं लेकिन गरीबो की–जिनका कोई स्वामी नही है, दया करने वाले विरले ही होते हैं। बडो की जो दया की जाती है, वह दया नही, सेवा है। दया तो दुखी की होती है। और दया करने के लिए जो दुखी का चरित्र देखने लगता है वह दयावान् नही है। दयावान् वह है जो दुखी के चरित्र को सुधार देता है।

भगवान् ने सबसे कहा—इन दुखी जीवों की करुणा मेरा हृदय अपनी ओर आकर्षित कर रही है। जगत् में हाय-हाय मची हुई है। उसी को मिटाने के लिए मैं यत्न करना चाहता हू। मैं आपका अपमान नही कर रहा हूं। इस पर भी आप अपना अपमान समझते हैं तो यह आपका भ्रम है।

जो गरीब जीवो की दया करते रहते हैं उनकी ओर सभी का आकर्षण रहता है। मोरवी के महाराजा से–जो यहाँ उपस्थित हैं, मेरी बातचीत हुई तो मालूम हुआ कि आप दीनो का दु ख मिटाने के लिए लाखो की सखावत किया करते हैं और लोगो को उसका पता भी नही चलने देते। जिनके अन्त करण मे ऐसी दया है, उनकी ओर हमारा भी आकर्षण होना स्वाभाविक है। इसी कारण अहमदाबाद के बदले यहाँ चौमासा करना पडा है।

जनिक हित का विशिष्ट कार्य करना उचित है। गीता में कहा है—

मा शुचः सम्पदं दैवीमभिजातस्य भारत !

अर्थात् - हे पार्थ ! तू दैवी सम्पदा भोगने वाला है। इसी प्रकार आपके महाराजा भी दैवी सम्पदा भोगने वाले हैं ऐसे राजा मिलने पर भी अगर इस राज्य मे 'अमर-पहेडा' (हिंसानिषेघ का पटह) न बजा तो कब बजेगा ? महाराज के द्वारा होने वाले शुभ कार्यों के यज्ञ में आप लोग भी कुछ भाग लें तो आपको भी लाभ होगा, इन महाराजा साहब को भी प्रोत्साहन मिलेगा और दुखियों का दुख मिट जायेगा। जब जनता गरीबों के हित के कार्यों मे हाथ बँटाने लगेगी तो इन्हें भी यही विचार आएगा कि यदि मैं ऐसे कार्यों में अपनी सम्पत्ति न लगाऊँगा तो फिर किन-किन कामों में लगाऊँगा ? मोरवी काठियावाड मे एक विशिष्ट राज्य है। यह विशिष्टता स्वार्थ को ओर न खीचे तो बहुत काम हो सकता है।

भगवान् अरिष्टनेमि ने दीक्षा ली। यह समाचार सुनकर राजीमती को ऐसा आघात लगा कि वह यह सोचती हुई मूर्छित हो गई कि जब राजकुमार द्वार से लौटकर चले गये, उस समय से मुझे आशा थी कि एक बार तो वह आएँगे ही ! वे मुझे सतुष्ट करके ही दीक्षा लेंगे। मगर उन्होने मुझसे मिले बिना ही दीक्षा ले ली ! यह मेरा अपमान है। इस प्रकार के विचार से राजीमती बेहोश हो गई। तब राजीमती की सखी ने उसे होश मे लाकर कहा -तुम शोक और विषाद क्यों करती हो ! राजकुमार

जनिक हित का विशिष्ट कार्य करना उचित है। गीता में कहा है—

मा शुचः सम्पदं दैवीमभिजातस्य भारत !

अर्थात् - हे पार्थ ! तू दैवी सम्पदा भोगने वाला है। इसी प्रकार आपके महाराजा भी दैवी सम्पदा भोगने वाले हैं ऐसे राजा मिलने पर भी अगर इस राज्य मे 'अमर-पहेडा' (हिंसानिषेध का पटह) न बजा तो कब बजेगा ? महाराज के द्वारा होने वाले शुभ कार्यों के यज्ञ में आप लोग भी कुछ भाग लें तो आपको भी लाभ होगा, इन महाराजा साहब को भी प्रोत्साहन मिलेगा और दुखियों का दुख मिट जायेगा। जब जनता गरीबों के हित के कार्यों मे हाथ बँटाने लगेगी तो इन्हें भी यही विचार आएगा कि यदि मैं ऐसे कार्यों में अपनी सम्पत्ति न लगाऊँगा तो फिर किन-किन कामों में लगाऊँगा ? मोरवी काठियावाड मे एक विशिष्ट राज्य है। यह विशिष्टता स्वार्थ की ओर न खीचे तो बहुत काम हो सकता है।

भगवान् अरिष्टनेमि ने दीक्षा ली। यह समाचार सुनकर राजीमती को ऐसा आघात लगा कि वह यह सोचती हुई मूर्छित हो गई कि जब राजकुमार द्वार से लौटकर चले गये, उस समय से मुझे आशा थी कि एक बार तो वह आएँगे ही ! वे मुझे सतुष्ट करके ही दीक्षा लेंगे। मगर उन्होने मुझसे मिले बिना ही दीक्षा ले ली ! यह मेरा अपमान है। इस प्रकार के विचार से राजीमती वेहोश हो गई। तब राजोमती की सखी ने उसे होश मे लाकर कहा –तुम शोक और विषाद क्यों करती हो ! राजकुमार

जनिक हित का विशिष्ट कार्य करना उचित है। गीता में कहा है—

मा शुचः सम्पदं दैवीमभिजातस्य भारत !

अर्थात् - हे पार्थ ! तू दैवी सम्पदा भोगने वाला है। इसी प्रकार आपके महाराजा भी दैवी सम्पदा भोगने वाले हैं ऐसे राजा मिलने पर भी अगर इस राज्य में 'अमर-पहेडा' (हिंसानिषेध का पटह) न बजा तो कब बजेगा ? महाराज के द्वारा होने वाले शुभ कार्यों के यज्ञ में आप लोग भी कुछ भाग ले तो आपको भी लाभ होगा, इन महाराजा साहब को भी प्रोत्साहन मिलेगा और दुखियों का दुख मिट जायेगा। जब जनता गरीबों के हित के कार्यों में हाथ बँटाने लगेगी तो इन्हें भी यही विचार आएगा कि यदि मैं ऐसे कार्यों में अपनी सम्पत्ति न लगाऊँगा तो फिर किन-किन कामों मे लगाऊँगा ? मोरवी काठियावाड मे एक विशिष्ट राज्य है। यह विशिष्टता स्वार्थ की ओर न खीचे तो बहुत काम हो सकता है।

भगवान् अरिष्टनेमि ने दीक्षा ली ! यह समाचार सुनकर राजीमती को ऐसा आघात लगा कि वह यह सोचती हुई मूर्छित हो गई कि जब राजकुमार द्वार से लौटकर चले गये, उस समय से मुझे आशा थी कि एक बार तो वह आएँगे ही ! वे मुझे सतुष्ट करके ही दीक्षा लेंगे। मगर उन्होने मुझसे मिले बिना ही दीक्षा ले ली ! यह मेरा अपमान है। इस प्रकार के विचार से राजीमती बेहोश हो गई। तब राजीमती की सखी ने उसे होश मे लाकर कहा -तुम शोक और विषाद क्यों करती हो ! राजकुमार

जनिक हित का विशिष्ट कार्य करना उचित है। गीता में कहा है—

मा शुचः सम्पदं दैवीमभिजातस्य भारत !

अर्थात् हे पार्थ ! तू दैवी सम्पदा भोगने वाला है। इसी प्रकार आपके महाराजा भी दैवी सम्पदा भोगने वाले हैं ऐसे राजा मिलने पर भी अगर इस राज्य में 'अमर-पहेडा' (हिंसानिषेध का पटह) न बजा तो कब बजेगा ? महाराज के द्वारा होने वाले शुभ कार्यों के यज्ञ में आप लोग भी कुछ भाग ले तो आपको भी लाभ होगा, इन महाराजा साहब को भी प्रोत्साहन मिलेगा और दुखियों का दुख मिट जायेगा। जब जनता गरीबों के हित के कार्यों में हाथ बँटाने लगेगी तो इन्हें भी यही विचार आएगा कि यदि मैं ऐसे कार्यों में अपनी सम्पत्ति न लगाऊँगा तो फिर किन-किन कामों मे लगाऊँगा ? मोरवी काठियावाड मे एक विशिष्ट राज्य है। यह विशिष्टता स्वार्थ की ओर न खीचे तो बहुत काम हो सकता है।

भगवान् अरिष्टनेमि ने दीक्षा ली ! यह समाचार सुनकर राजीमती को ऐसा आघात लगा कि वह यह सोचती हुई मूर्छित हो गई कि जब राजकुमार द्वार से लौटकर चले गये, उस समय से मुझे आशा थी कि एक बार तो वह आएँगे ही ! वे मुझे सतुष्ट करके ही दीक्षा लेंगे। मगर उन्होने मुझसे मिले बिना ही दीक्षा ले ली ! यह मेरा अपमान है। इस प्रकार के विचार से राजीमती बेहोश हो गई। तब राजीमती की सखी ने उसे होश मे लाकर कहा –तुम शोक और विषाद क्यों करती हो ! राजकुमार

बनाने, खाने और पचाने की कला स्वयं ही सबको बतलाई थी। उन्होने बहत्तर पुरुषो की और चौंसठ स्त्रियों की कलाओ की शिक्षा दी थी। इस प्रकार जब स्त्री और पुरुष अपनी-अपनी योग्यता के अनुसार स्वावलम्बी बन गये और मर्यादा के अनुसार जीवन सबधी आवश्यकताओं की पूर्ति करने लगे तब भगवान् ने उन्हे धर्म का उपदेश दिया।

भगवान् ऋषभदेव से पहले सामाजिक व्यवस्था की स्थापना नही हुई थी। उस समय की जनता सामाजिक सगठन में गुथी नही थी। सब अपने में सीमित थे। भगवान् ऋषभदेव ने लोगों को समाज-सगठन के एक सूत्र मे बांधा, समाज का निर्माण हुआ। समाज-निर्माण के साथ ही साथ सामाजिक कर्त्तव्यों को जन्म दिया। भगवान् ने जिस व्यक्ति को जिस कार्य के योग्य देखा, उसे वही कार्य सौंपा। वास्तव मे योग्यता के अनुकूल कार्य सौंपने से कार्य भी समुचित रूप से सम्पन्न होता है और कार्य करने वाले व्यक्ति का भी विकास होता है। इससे विपरीत जो जिस कार्य के लिए अयोग्य है उसके सिर वह कार्य थोप देने से कार्य की भी हानि होती है और उस व्यक्ति की भी हानि होती है।

इस प्रकार समाज की स्थापना की जा चुकी और सामाजिक कर्त्तव्यो का निर्माण हो चुका तभी वर्ण व्यवस्था बनी। विभिन्न वर्ग कर्त्तव्य के आधार पर बनाये गये। वह वर्ग 'वर्ण' कहलाए। याद रखना चाहिए कि वर्ण व्यवस्था का एक मात्र आधार सामाजिक कर्त्तव्यों को भलीभांति पूरा करना था। उसमें किसी प्रकार की ऊँच-नीच की भावना को अवकाश नही था।

बनाने, खाने और पचाने की कला स्वयं ही सबको बतलाई थी। उन्होने बहत्तर पुरुषो की और चौंसठ स्त्रियों की कलाओ की शिक्षा दी थी। इस प्रकार जब स्त्री और पुरुष अपनी-अपनी योग्यता के अनुसार स्वावलम्बी बन गये और मर्यादा के अनुसार जीवन संबंधी आवश्यकताओं की पूर्ति करने लगे तब भगवान् ने उन्हे धर्म का उपदेश दिया।

भगवान् ऋषभदेव से पहले सामाजिक व्यवस्था की स्थापना नही हुई थी। उस समय की जनता सामाजिक संगठन में गुथी नही थी। सब अपने में सीमित थे। भगवान् ऋषभदेव ने लोगों को समाज-संगठन के एक सूत्र मे बांधा, समाज का निर्माण हुआ। समाज-निर्माण के साथ ही साथ सामाजिक कर्त्तव्यों को जन्म दिया। भगवान् ने जिस व्यक्ति को जिस कार्य के योग्य देखा, उसे वही कार्य सौंपा। वास्तव मे योग्यता के अनुकूल कार्य सौंपने से कार्य भी समुचित रूप से सम्पन्न होता है और कार्य करने वाले व्यक्ति का भी विकास होता है। इससे विपरीत जो जिस कार्य के लिए अयोग्य है उसके सिर वह कार्य थोप देने से कार्य की भी हानि होती है और उस व्यक्ति की भी हानि होती है।

करने के पश्चात् भगवान् ने सयम लिया ।

भगवान् के सबसे बड़े पुत्र भरत के यहा चक्ररत्न उत्पन्न हुआ । भरत समस्त भारतवर्ष को एक ही शासन के अन्तर्गत करना चाहते थे । अतएव उन्होने अन्यान्य राजाओं पर अपना शासन स्थापित कर लिया । उनका विचार अपने भाइयो पर शासन चलाने का नही था । किन्तु अपने प्रधान के कहने से और आयुधशाला मे चक्र-रत्न के न घुसने से भरत को विवश होकर अपने भाइयों पर भी शासन करने का विचार करना पड़ा । तदनुसार भरत ने पहले अपने ६८ भाइयो के पास शासन स्वीकार करने के लिए सदेश भेजा । सदेशा पाकर वे लोग सोचने लगे कि इस परिस्थिति मे हमारा कर्त्तव्य क्या होना चाहिए ? भरत का शासन स्वीकार करना उचित है या युद्ध करना उचित है ? जब विचार करके भी वे किसी अन्तिम निर्णय पर न पहुच पाये तो भगवान् से सलाह लेने का उन्होने निर्णय किया । उन्होने सोचा–अगर भगवान् युद्ध करने की सलाह दे तो युद्ध करना चाहिए । उस अवस्था मे अपनी हार कदापि नही हो सकती । अगर भगवान् कहे कि भरत तुम्हारा बडा भाई है और समग्र देश को एक सूत्र मे बांधने के लिए ही वह तुम्हारे ऊपर शासन चलाना चाहता है तो हमे भरत के शासन को स्वीकार कर लेने मे भी कोई आपत्ति नही होनी चाहिए ।

इस प्रकार सोचकर ६८ भाई मिलकर भगवान् के पास पहुचे । उस समय भगवान् ने अपने पुत्रो को जो उपदेश दिया था, उसका वर्णन सूयगडांगसूत्र मे भी है और

करने के पश्चात् भगवान् ने सयम लिया ।

भगवान् के सबसे वड़े पुत्र भरत के यहा चक्ररत्न उत्पन्न हुआ । भरत समस्त भारतवर्ष को एक ही शासन के अन्तर्गत करना चाहते थे। अतएव उन्होने अन्यान्य राजाओं पर अपना शासन स्थापित कर लिया । उनका विचार अपने भाइयो पर शासन चलाने का नही था । किन्तु अपने प्रधान के कहने से और आयुधशाला मे चक्र-रत्न के न घुसने से भरत को विवश होकर अपने भाइयों पर भी शासन करने का विचार करना पड़ा । तदनुसार भरत ने पहले अपने ९८ भाइयो के पास शासन स्वीकार करने के लिए सदेश भेजा । सदेश पाकर वे लोग सोचने लगे कि इस परिस्थिति मे हमारा कर्त्तव्य क्या होना चाहिए ? भरत का शासन स्वीकार करना उचित है या युद्ध करना उचित है ? जब विचार करके भी वे किसी अन्तिम निर्णय पर न पहुच पाये तो भगवान् से सलाह लेने का उन्होने निर्णय किया । उन्होने सोचा—अगर भगवान् युद्ध करने की सलाह दे तो युद्ध करना चाहिए । उस अवस्था मे अपनी हार कदापि नही हो सकती । अगर भगवान् कहे कि भरत तुम्हारा वडा भाई है और समग्र देश को एक सूत्र मे बांधने के लिए ही वह तुम्हारे ऊपर शासन चलाना चाहता है तो हमे भरत के शासन को स्वीकार कर लेने मे भी कोई आपत्ति नही होनी चाहिए ।

इस प्रकार सोचकर ९८ भाई मिलकर भगवान् के पास पहुचे । उस समय भगवान् ने अपने पुत्रो को जो उपदेश दिया था, उसका वर्णन सूयगडांगसूत्र मे भी है और

दूसरा शासन न चला सके ।

सबुज्झह किं न बुज्झह, सबोही खलु पेच्च दुल्लहा !
णो हूवणमति राइओ, नो सुलभं पुणरावि जीवियं !!

— सूयगडागसूत्र

अर्थात्–हे पुत्रो ! समझो । बोध पाओ । बोधि बहुत दुर्लभ है । जो समय व्यतीत हो जाता है वह फिर लौटकर नही आता । मनुष्य-जीवन बार बार सुलभ नही है ।

नायं देहो देहभाजा नृलोके,
कष्टान् करमानर्हते विड्भुजीये ।
तपो दिव्य पुत्र कायेन सत्त्व,
शुद्धयेद्यस्माद् ब्रह्मसौख्य त्वनन्तम् ।

—भागवत

हमे इन दोनों जगह के उपदेशो की मौलिक एकता पर विचार करना चाहिए । अगर कोई समझता है कि भगवान् ऋषभदेव जैनो के ही भगवान् हैं तो उसका ऐसा समझना भूल है । महापुरुष किसी विशिष्ट वर्ग जाति या समूह के नहीं होते । महापुरुषों के समक्ष सभी ने अपना मस्तक झुकाया है । चाहे राम हो या ऋषभदेव हो, वे सभी के लिए मान्य हैं । फिर भी धर्मभावना की कमी और साम्प्रदायिकता की भावना मे वृद्धि होने से लोग आपस मे लडते-झगडते हैं । जब तक मनुष्य पूर्ण धर्म नही जानता और धर्म के नाम से अधर्म को पकडे रहता है, तब तक क्लेश और कलह होना स्वाभाविक है । जब किसी महापुरुष की शरण मे जाने पर धर्म की प्राप्ति

दूसरा शासन न चला सके ।

सबुज्झह किं न बुज्झह, सबोही खलु पेच्च दुल्लहा !
णो हूवणमंति राइओ, नो सुलभं पुणरावि जीवियं !!
— सूयगडांगसूत्र

अर्थात्–हे पुत्रो ! समझो । बोध पाओ । बोधि बहुत दुर्लभ है । जो समय व्यतीत हो जाता है वह फिर लौटकर नही आता । मनुष्य-जीवन वार वार सुलभ नहीं है ।

नायं देहो देहभाजां नृलोके,
कष्टान् करमानर्हते विड्भुजीये ।
तपो दिव्य पुत्र कायेन सत्त्व,
शुद्धयेद्यस्माद् ब्रह्मसौख्य त्वनन्तम् ।
—भागवत

हमे इन दोनों जगह के उपदेशो की मौलिक एकता पर विचार करना चाहिए । अगर कोई समझता है कि भगवान् ऋषभदेव जैनो के ही भगवान् हैं तो उसका ऐसा समझना भूल है । महापुरुष किसी विशिष्ट वर्ग जाति या समूह के नहीं होते । महापुरुषों के समक्ष सभी ने अपना मस्तक झुकाया है । चाहे राम हो या ऋषभदेव हो, वे सभी के लिए मान्य हैं । फिर भी धर्मभावना की कमी और साम्प्रदायिकता की भावना मे वृद्धि होने से लोग आपस मे लडते-झगडते हैं । जब तक मनुष्य पूर्ण धर्म नही जानता और धर्म के नाम से अधर्म को पकडे रहता है, तब तक क्लेश और कलह होना स्वाभाविक है । जब किसी महापुरुष की शरण मे जाने पर धर्म की प्राप्ति

सर्वोत्तम प्राणी है। ईश्वरत्व का प्रतिनिधि है। धर्म और कायदा-कानून मे भी उसका दर्जा ऊँचा है तथा पशुओ को मारने पर जितना दंड नही दिया जाता, उतना मनुष्य की हत्या करने पर दिया जाता है। ऐसी स्थिति मे सिहो का यह सर्वसम्मत निर्णय भी सही कैसे हो सकता है कि मनुष्य, सिहों की खुराक के लिए बनाये गए है।

इस प्रकार का तर्क उपस्थित करके आप सिहो के प्रस्ताव को अनुचित बतला सकते हैं। किन्तु ऐसी ही युक्तियो के आधार पर यह भी कहा जा सकता है कि यह मनुष्य शरीर भोग के लिए नही है।

फिर प्रश्न किया जा सकता है—अगर मानव शरीर भोग भोगने के लिए नही है तो फिर किसलिए है? इस शरीर की सार्थकता किसमे है? इस प्रश्न का उत्तर यह है कि ससार मे एक चीज दूसरे के काम मे तो आती है, परन्तु इसी कारण यह मान लेना कि हमारे लिए ही बनी है, भूल है। ऐसा मानने से बड़ी गड़बड़ो होगी। इसके अतिरिक्त यह बात किसी युक्ति या तर्क से सिद्ध भी नही की जा सकती। उदाहरण के लिए कल्पना कीजिए, कोई कहता है कि अन्न मनुष्य के खाने के लिए ही बना है। अब उससे पूछना चाहिए कि अगर तुम्हारा कहना एकान्तत: सत्य है तो अन्न के होते हुए भी ससार में लाखो मनुष्य भूखे क्यो मरते हैं, इसी प्रकार अगर कपड़ा मनुष्यो के लिए बना है तो मनुष्य नगे क्यो रहते है? यह चीजें मनुष्यो के लिए ही बनी है, इस कथन मे अगर एकान्त रूप से सचाई है तो वे मनुष्यो के पास दौड़ कर क्यो नही

सर्वोत्तम प्राणी है। ईश्वरत्व का प्रतिनिधि है। धर्म और कायदा-कानून मे भी उसका दर्जा ऊँचा है तथा पशुओ को मारने पर जितना दंड नही दिया जाता, उतना मनुष्य की हत्या करने पर दिया जाता है। ऐसी स्थिति मे सिंहो का यह सर्वसम्मत निर्णय भी सही कैसे हो सकता है कि मनुष्य, सिंहों की खुराक के लिए बनाये गए है।

इस प्रकार का तर्क उपस्थित करके आप सिंहो के प्रस्ताव को अनुचित बतला सकते हैं। किन्तु ऐसी ही युक्तियो के आधार पर यह भी कहा जा सकता है कि यह मनुष्य शरीर भोग के लिए नही है।

फिर प्रश्न किया जा सकता है-अगर मानव शरीर भोग भोगने के लिए नही है तो फिर किसलिए है? इस शरीर की सार्थकता किसमे है? इस प्रश्न का उत्तर यह है कि ससार मे एक चीज दूसरे के काम मे तो आती है, परन्तु इसी कारण यह मान लेना कि हमारे लिए ही बनी है, भूल है। ऐसा मानने से वड़ी गड़बड़ो होगी। इसके अतिरिक्त यह बात किसी युक्ति या तर्क से सिद्ध भी नही की जा सकती। उदाहरण के लिए कल्पना कीजिए, कोई कहता है कि अन्न मनुष्य के खाने के लिए ही बना है। अब उससे पूछना चाहिए कि अगर तुम्हारा कहना एकान्ततः सत्य है तो अन्न के होते हुए भी ससार में लाखो मनुष्य भूखे क्यो मरते हैं, इसी प्रकार अगर कपड़ा मनुष्यो के लिए बना है तो मनुष्य नगे क्यो रहते है? यह चीजें मनुष्यो के लिए ही बनी है, इस कथन मे अगर एकान्त रूप से सचाई है तो वे मनुष्यो के पास दौड़ कर क्यो नही

मान लिया जाये तो रुचि की भिन्नता के कारण प्रत्येक चीज भिन्न-भिन्न कामों के लिए मानी जायेगी। उदाहरण के लिए विष्ठा को ही देखो। विष्ठा को सुअर जिस दृष्टि से देखता है, क्या मनुष्य उसे उसी दृष्टि से देखता है ? नही। इस प्रकार रुचि की भिन्नता के कारण पदार्थ के विषय मे दृष्टिभेद रखता है या नही ? एक सुन्दरी को उसका लडका किस दृष्टि से देखता है ? पति किस दृष्टि से देखता है ? कामी पुरुष किस दृष्टि से देखता है ? और योगी किस दृष्टि से देखता है ? लडका उसे अपनी जननी के रूप मे देखता है। पति पत्नी के रूप मे देखता है। कामी आदमी कामना की पूर्ति का साधन समझता है और योगी उसे अपने योग मे सहायिका मानता है। अब देखना चाहिए कि वह सुन्दरी वास्तव मे है किस के लिए ? वास्तव मे तो वह अपना शुभ-अशुभ परिपाक भोगने के लिए है। मगर लोग दृष्टिभेद के कारण उसे अपने-अपने लिए मानते है।

जिन चीजो को आप अपने लिए मानते हैं, उन्ही को पशु अपने लिए मानते हैं। आप जिन पदार्थों का उपभोग करते है, वे अगर पशुओ को मिले तो क्या पशु उनका उपयोग नही करेंगे ? बल्कि पशु, पक्षी और कीटाणु जिन वस्तुओ को भोगते है, स्वतन्त्र रूप से भोगते हैं। आप उनकी तरह स्वतन्त्र रूप से नही भोग सकते। इसके लिए शहद की मक्खियो का ही उदाहरण ले लीजिए। वैज्ञानिको के कथनानुसार वे कैसा छत्ता बनाती है, उसमे किस प्रकार न्यून से न्यून मोम लगाती हैं, किस प्रकार शहद भरती हैं एव किस प्रकार सफाई रखती हैं, किस प्रकार वस्तु का

मान लिया जाये तो रुचि की भिन्नता के कारण प्रत्येक चीज भिन्न-भिन्न कामों के लिए मानी जायेगी। उदाहरण के लिए विष्ठा को ही देखो। विष्ठा को सुअर जिस दृष्टि से देखता है, क्या मनुष्य उसे उसी दृष्टि से देखता है? नही। इस प्रकार रुचि की भिन्नता के कारण पदार्थ के विषय मे दृष्टिभेद रखता है या नही? एक सुन्दरी को उसका लडका किस दृष्टि से देखता है? पति किस दृष्टि से देखता है? कामी पुरुष किस दृष्टि से देखता है? और योगी किस दृष्टि से देखता है? लडका उसे अपनी जननी के रूप मे देखता है। पति पत्नी के रूप मे देखता है। कामी आदमी-कामना की पूर्ति का साधन समझता है और योगी उसे अपने योग मे सहायिका मानता है। अब देखना चाहिए कि वह सुन्दरी वास्तव मे है किस के लिए? वास्तव मे तो वह अपना शुभ-अशुभ परिपाक भोगने के लिए है। मगर लोग दृष्टिभेद के कारण उसे अपने-अपने लिए मानते है।

जिन चीजो को आप अपने लिए मानते हैं, उन्ही को पशु अपने लिए मानते हैं। आप जिन पदार्थों का उपभोग करते है, वे अगर पशुओ को मिले तो क्या पशु उनका उपयोग नही करेंगे? बल्कि पशु, पक्षी और कीटाणु जिन वस्तुओ को भोगते है, स्वतन्त्र रूप से भोगते हैं। आप उनकी तरह स्वतन्त्र रूप से नही भोग सकते। इसके लिए शहद की मक्खियो का ही उदाहरण ले लीजिए। वैज्ञानिको के कथनानुसार वे कैसा छत्ता बनाती है, उसमे किस प्रकार न्यून से न्यून मोम लगाती हैं, किस प्रकार शहद भरती हैं एव किस प्रकार सफाई रखती हैं, किस प्रकार वस्तु का

इस ससार में मनुष्यों की दो श्रेणिया की जा सकती हैं। पहली श्रेणी मे वे हैं जो अपना जन्म भोग के लिए ही मान रहे हैं और दूसरी श्रेणी उनकी है जो जीवन का उद्देश्य तप समझते है। इन दोनों श्रेणियों के लोग पहले भी थे और आज भी हैं। इन दोनो मे कितना अन्तर है और अन्त मे किसके लिए क्या परिणाम निकलता है, यह वात एक कथा द्वारा वतला देना उचित होगा।

अयोध्या में अवध–नरेश राज्य करते थे और काशी में काशी–नरेश राज्य करते थे। अवध--नरेश सोचते थे कि हम प्रजा की रक्षा एव सेवा करने के लिए राज्य करते है और हमारा यह शरीर दिव्य तप करने के लिए है। दूसरी ओर काशीनरेश का यह विचार था कि हम उच्च श्रेणी के भोग भोगने के लिए राजा हुए हैं। इसलिए सव अच्छे-अच्छे रत्न हमारे पास ही होने चाहिए। इस प्रकार दोनो राजा दो प्रकार की श्रद्धा के थे। यह तो नियम ही है कि जिसकी जैसी श्रद्धा होती है, वह वैसा ही वन जाता है। कहा भी है—

श्रद्धामयोऽय पुरुष. यो यच्छ्द्ध स एव सः।

अर्थात्—मनुष्य अपनी श्रद्धा के अनुरूप ही हो जाता है। जिसकी श्रद्धा जैसी होती है, वैसा ही वह बन जाता है।

इस उक्ति के अनुसार दोनो राजाओ की प्रकृति उनकी अपनी-अपनी श्रद्धा के अनुसार वन गई थी। अवधनरेश ने अपना जीवन प्रजा की सेवा मे ही लगा दिया था। इस कारण उनके राज्य मे तो उनका जयजयकार होता ही

इस ससार में मनुष्यों की दो श्रेणिया की जा सकती हैं। पहली श्रेणी मे वे हैं जो अपना जन्म भोग के लिए ही मान रहे हैं और दूसरी श्रेणी उनकी है जो जीवन का उद्देश्य तप समझते है। इन दोनों श्रेणियों के लोग पहले भी थे और आज भी हैं। इन दोनो मे कितना अन्तर है और अन्त मे किसके लिए क्या परिणाम निकलता है, यह बात एक कथा द्वारा बतला देना उचित होगा।

अयोध्या में अवध-नरेश राज्य करते थे और काशी में काशी-नरेश राज्य करते थे। अवध--नरेश सोचते थे कि हम प्रजा की रक्षा एव सेवा करने के लिए राज्य करते है और हमारा यह शरीर दिव्य तप करने के लिए है। दूसरी ओर काशीनरेश का यह विचार था कि हम उच्च श्रेणी के भोग भोगने के लिए राजा हुए हैं। इसलिए सब अच्छे-अच्छे रत्न हमारे पास ही होने चाहिए। इस प्रकार दोनो राजा दो प्रकार की श्रद्धा के थे। यह तो नियम ही है कि जिसकी जैसी श्रद्धा होती है, वह वैसा ही बन जाता है। कहा भी है—

श्रद्धामयोऽयं पुरुष. यो यच्छ्रद्ध स एव सः।

अर्थात्—मनुष्य अपनी श्रद्धा के अनुरूप ही हो जाता है। जिसकी श्रद्धा जैसी होती है, वैसा ही वह बन जाता है।

इस उक्ति के अनुसार दोनो राजाओ की प्रकृति उनकी अपनी-अपनी श्रद्धा के अनुसार बन गई थी। अवधनरेश ने अपना जीवन प्रजा की सेवा मे ही लगा दिया था। इस कारण उनके राज्य मे तो उनका जयजयकार होता ही

प्रधान—महाराज, आज अवध के महाराज का जन्म-दिन है। प्रजा इसी उपलक्ष्य मे आनन्द मना रही है।

प्रधान की बात सुनते ही काशीनरेश की त्यौरियाँ चढ गई। क्रुद्ध स्वर मे वह कहने लगा—मेरे राज्य मे अवधराज का जन्म-दिवस मनाया जाता है! प्रधान, तुम क्या व्यवस्था करते हो?

प्रधान महाराज पृथ्वी क राज्य की सीमा होती है, प्रेम के राज्य की सीमा नही होती। ऐसी स्थिति मे प्रजा को अवधेश का जन्मदिवस मनाने से किस प्रकार रोका जा सकता है? अगर मेरी बात पर आपको भरोसा न हो तो परीक्षा करके देख लीजिये। आप स्वय प्रजा को रोककर देखिए। आपको विदित हो जायेगा कि आपकी प्रजा अवधेश से कितना प्रेम करती है?

प्रधान की बात सुनकर राजा को आश्चर्य हुआ। मगर प्रजा से कोई बात पूछने का साहस उसे नही हुआ। उसने सोचा—इस समय लोग हर्ष मे विभोर है। छेडछाड़ करना उचित नही होगा।

राजा किंचित् आश्चर्य और चिन्ता के साथ महल की ओर लौट गया। उसके हृदय मे यह बात काटे की तरह चुभ रही थी कि मेरे राज्य मे अवध-नरेश का जन्म-दिवस मनाया जाता है! इस विचार से उसके अन्तःकरण मे ईर्षा की आग धधक उठी। अपनी सुलगाई आग मे वह आप ही ईंधन बनने लगा। उसे रात मे नीद नही आई। इधर उधर करवट बदलने लगा। रानी से उसकी मानसिक व्यग्रता छिपी नही रही। रानी ने पास जाकर

प्रधान—महाराज, आज अवध के महाराज का जन्म-दिन है। प्रजा इसी उपलक्ष्य मे आनन्द मना रही है।

प्रधान की बात सुनते ही काशीनरेश की त्यौरियाँ चढ गई। क्रुद्ध स्वर मे वह कहने लगा—मेरे राज्य मे अवधराज का जन्म-दिवस मनाया जाता है! प्रधान, तुम क्या व्यवस्था करते हो?

प्रधान महाराज पृथ्वी क राज्य की सीमा होती है, प्रेम के राज्य की सीमा नही होती। ऐसी स्थिति मे प्रजा को अवधेश का जन्मदिवस मनाने से किस प्रकार रोका जा सकता है? अगर मेरी बात पर आपको भरोसा न हो तो परीक्षा करके देख लीजिये। आप स्वय प्रजा को रोककर देखिए। आपको विदित हो जायेगा कि आपकी प्रजा अवधेश से कितना प्रेम करती है?

प्रधान की बात सुनकर राजा को आश्चर्य हुआ। मगर प्रजा से कोई बात पूछने का साहस उसे नही हुआ। उसने सोचा—इस समय लोग हर्ष मे विभोर है। छेडछाड़ करना उचित नही होगा।

राजा किंचित् आश्चर्य और चिन्ता के साथ महल की ओर लौट गया। उसके हृदय मे यह बात काटे की तरह चुभ रही थी कि मेरे राज्य मे अवध-नरेश का जन्म-दिवस मनाया जाता है! इस विचार मे उसके अन्तःकरण मे ईर्षा की आग धधक उठी। अपनी सुलगाई आग मे वह आप ही इंधन बनने लगा। उसे रात मे नीद नही आई। इधर उधर करवट बदलने लगा। रानी से उसकी मानसिक व्यग्रता छिपी नही रही। रानी ने पास जाकर

समझ मे आ गये तो उस घटना का प्रतीकार करना सहज हो जाता है। चिन्ता तो स्थिति को अधिक खराब कर देती है।

राजा—समझ में नही आता कि अवध के राजा ने हमारी प्रजा पर क्या जादू फेर दिया है ?

रानी—नाथ, मेरी समझ तो यह है कि हमारे हृदय की मधुरता और वाणी की मिठास ही सबसे बड़े जादू हैं। जिसमे यह दो बातें होती हैं वह अनायस ही दूसरो को अपनी ओर आकृष्ट कर लेता है। इससे बाद भलाई करने का नम्बर आता है। उस आकर्षण को स्थायी और प्रबल बनाने के लिए दूसरों की भलाई के काम करना आवश्यक है। अवध का राजा क्या काम करता है जिससे अपनी प्रजा उसका जन्मदिन मनाती है ? आप इस बात पर विचार कीजिए और वही काम आप भी करना आरभ कर दीजिए।

राजा—इससे क्या होगा ?

रानी—इससे यह होगा कि आपकी प्रजा अवध के राजा को भूल जायेगी और आपका आदर करेगी। इतना ही नही, वरन् अवध की प्रजा भी आपका जन्मदिवस मनाने लगेगी।

रानी ने बावन तोले पाव रत्ती बात कही थी। मगर राजा को यह सलाह पसद नही आई। उसने कहा—आखिर तो तुम स्त्री ही ठहरी न ! तुमने स्त्रियों के योग्य ही बात कही है। तुम नही समझती कि मैं अवधनरेश की तरह कायर नही हूं और प्रजा का गुलाम बनकर नहीं रह

समझ मे आ गये तो उस घटना का प्रतीकार करना सहज हो जाता है। चिन्ता तो स्थिति को अधिक खराब कर देती है।

राजा—समझ में नही आता कि अवध के राजा ने हमारी प्रजा पर क्या जादू फेर दिया है ?

रानी—नाथ, मेरी समझ तो यह है कि हमारे हृदय की मधुरता और वाणी की मिठास ही सबसे बड़े जादू हैं। जिसमे यह दो बातें होती हैं वह अनायस ही दूसरो को अपनी ओर आकृष्ट कर लेता है। इससे बाद भलाई करने का नम्बर आता है। उस आकर्षण को स्थायी और प्रबल बनाने के लिए दूसरों की भलाई के काम करना आवश्यक है। अवध का राजा क्या काम करता है जिससे अपनी प्रजा उसका जन्मदिन मनाती है ? आप इस बात पर विचार कीजिए और वही काम आप भी करना आरभ कर दीजिए।

राजा—इससे क्या होगा ?

रानी—इससे यह होगा कि आपकी प्रजा अवध के राजा को भूल जायेगी और आपका आदर करेगी। इतना ही नही, वरन् अवध की प्रजा भी आपका जन्मदिवस मनाने लगेगी।

रानी ने बावन तोले पाव रत्ती बात कही थी। मगर राजा को यह सलाह पसद नही आई। उसने कहा—आखिर तो तुम स्त्री ही ठहरी न ! तुमने स्त्रियों के योग्य ही बात कही है। तुम नही समझती कि मै अवधनरेश की तरह कायर नही हूं और प्रजा का गुलाम बनकर नहीं रह

मत्री ने अवधराज से कहा—महाराज, मै तो पहले ही कहता था कि सीमाओ पर पर्याप्त सेना रखनी चाहिए। सेना के विना राज्य की रक्षा नही होती। मगर आपने मेरी बात अनसुनी कर दी। उसका परिणाम आज दिखाई दे रहा है।

अवधनरेश— यह तो ठीक है, मगर काशीराज ने चढ़ाई क्यो की है? हमारी ओर से कोई ऐसा कारण नही हुआ कि उन्हे चढाई करनी पड़ी।

मत्री—चढ़ाई का कोई खास कारण नही हुआ करता। जो महत्त्वाकाक्षी और बलवान् होता है वह निष्कारण ही दूसरे राज्य पर हमला करके अपने राज्य का विस्तार कर लेता है। अब अगर आपकी आज्ञा हो तो जो सेना तैयार है, उसी को लेकर काशीनरेश का सामना करने की योजना करूं।

अवधराज—नही, ऐसा करने की आवश्यकता नही है। काशीनरेश की सेना के प्रवाह में अपने थोड़े-से लोगो को वहा देना अनुचित है। एक वार मैं स्वयमेव काशीनरेश से मिलकर बातें करना चाहता हूं इस वार्तालाप का परिणाम देख लेने के पश्चात् जो उचित होगा, किया जायेगा।

अवधनरेश घोडे पर सवार होकर अकेले ही काशीनरेश से मिलने के लिए रवाना हुए। लोग कहने लगे—अकेले शत्रु की सेना में जाना उचित नही है। मंत्री ने भी समझाया— महाराज! ऐसा करना राजनीति से विरुद्ध

मत्री ने अवधराज से कहा—महाराज, मै तो पहले ही कहता था कि सीमाओ पर पर्याप्त सेना रखनी चाहिए। सेना के विना राज्य की रक्षा नही होती। मगर आपने मेरी वात अनसुनी कर दी। उसका परिणाम आज दिखाई दे रहा है।

अवधनरेश—यह तो ठीक है, मगर काशीराज ने चढ़ाई क्यो की है? हमारी ओर से कोई ऐसा कारण नही हुआ कि उन्हे चढाई करनी पड़ी।

मत्री—चढ़ाई का कोई खास कारण नही हुआ करता। जो महत्त्वाकाक्षी और बलवान् होता है वह निष्कारण ही दूसरे राज्य पर हमला करके अपने राज्य का विस्तार कर लेता है। अब अगर आपकी आज्ञा हो तो जो सेना तैयार है, उसी को लेकर काशीनरेश का सामना करने की योजना करू ।

अवधराज—नही, ऐसा करने की आवश्यकता नही है। काशीनरेश की सेना के प्रवाह में अपने थोड़े-से लोगो को वहा देना अनुचित है। एक वार मैं स्वयमेव काशी-नरेश से मिलकर वातें करना चाहता हूं इस वार्तालाप का परिणाम देख लेने के पश्चात् जो उचित होगा, किया जायेगा।

अवधनरेश घोडे पर सवार होकर अकेले ही काशी-नरेश से मिलने के लिए रवाना हुए। लोग कहने लगे—अकेले शत्रु की सेना में जाना उचित नही है। मंत्री ने भी समझाया— महाराज! ऐसा करना राजनीति से विरुद्ध

अपने राज्य की रक्षा आप करते और अपने राज्य की रक्षा मैं करता । मगर आप मेरे प्रश्नों का उत्तर नही देना चाहते । इससे जान पडता है कि आप अवध का भी राज्य चाहते हैं । इसी कारण आप बार बार तलवार की बात कहते हैं । लेकिन मैं अपनी प्रजा का रक्त नही बहाना चाहता । युद्ध का अवसर आवे, यह मुझे अभीष्ट नही है । आपको राज्य चाहिए तो खुशी से लीजिए । सिर्फ इस बात का ध्यान रखिए कि जिस प्रकार मैंने प्रजा का पालन किया है उसी प्रकार आप करें और प्रजा को कष्ट न होने दें । राज्य प्रजा की सुख-शांति के लिए है । राज्य पाकर राजा को अपनी प्रजा के प्रति एक पवित्र कर्त्तव्य पालना पडता है । जब आप मेरा कर्त्तव्य अपने माथे ले रहे हैं तो मेरा बोझ हल्का हो रहा है । इसके लिए युद्ध क्यों किया जाये ? प्रजा का रक्त क्यो वहाया जाये ?

अवधनरेश इतना कहकर और थोडी देर उत्तर की प्रतीक्षा करके, उत्तर न मिलने पर रवाना होने लगे । चलते-चलते उन्होंने फिर दुहराया—ठीक है, मैं जाता हू । प्रजा का ध्यान रखिएगा ।

इतना कहकर अवधनरेश जंगल की ओर चल दिये । काशीराज यह देखकर प्रसन्न हुआ और सोचने लगा—मैं कितना वहादुर हू । मेरे भय से अवध का राजा जगल में भाग गया । वह मेरा सामना नही कर सका । युद्ध किये विना ही मेरी जीत हो गई ।

काशीराज ने अयोध्या पहुचकर अपना झडा फहरा दिया । अपने कर्मचारियो को वहा शासन सँभलाकर वह

अपने राज्य की रक्षा आप करते और अपने राज्य की रक्षा मैं करता। मगर आप मेरे प्रश्नों का उत्तर नही देना चाहते। इससे जान पडता है कि आप अवध का भो राज्य चाहते हैं। इसी कारण आप बार बार तलवार की बात कहते हैं। लेकिन मैं अपनी प्रजा का रक्त नही बहाना चाहता। युद्ध का अवसर आवे, यह मुझे अभीष्ट नही है। आपको राज्य चाहिए तो खुशी से लीजिए। सिर्फ इस बात का ध्यान रखिए कि जिस प्रकार मैंने प्रजा का पालन किया है उसी प्रकार आप करें और प्रजा को कष्ट न होने दें। राज्य प्रजा की सुख-शाति के लिए है। राज्य पाकर राजा को अपनी प्रजा के प्रति एक पवित्र कर्त्तव्य पालना पडता है। जब आप मेरा कर्त्तव्य अपने माथे ले रहे हैं तो मेरा बोझ हल्का हो रहा है। इसके लिए युद्ध क्यों किया जाये ? प्रजा का रक्त क्यो वहाया जाये ?

अवधनरेश इतना कहकर और थोडी देर उत्तर की प्रतीक्षा करके, उत्तर न मिलने पर रवाना होने लगे। चलते-चलते उन्होने फिर दुहराया—ठीक है, मैं जाता हू। प्रजा का ध्यान रखिएगा।

इतना कहकर अवधनरेश जंगल की ओर चल दिये। काशीराज यह देखकर प्रसन्न हुआ और सोचने लगा—मैं कितना वहादुर हू। मेरे भय से अवध का राजा जगल में भाग गया। वह मेरा सामना नही कर सका। युद्ध किये विना ही मेरी जीत हो गई।

काशीराज ने अयोध्या पहुचकर अपना झडा फहरा दिया। अपने कर्मचारियो को वहा शासन सँभलाकर वह

कपड़े पहले बैठी है ! यह देखकर राजा ने कहा मेरे जीवित रहते काले कपड़े क्यों पहिने है ?

रानी ने तमक कर कहा— आपका जीवित रहना और न रहना एक समान हो गया है। बल्कि मेरी समझ में अपयशमय जीवन की अपेक्षा यशोमय मृत्यु अधिक श्रेयस्कर होती है। आप अपनी प्रजा को तो सुख दे नही सके और अवध की प्रजा से सुख देने वाला राजा आपने छीन लिया ! अवध की प्रजा का सुख नष्ट करके और उसे दुखी करके आपने क्या पा लिया ? आज कोई भी समझदार व्यक्ति आपके इस कार्य की सराहना नही करता। सभी लोग एक स्वर से इस अन्याय, अत्याचार की निन्दा कर रहे हैं।

रानी की बात सुनकर राजा को सद्बुद्धि आनी चाहिये थी मगर उसे सद्बुद्धि नही आई। वह उल्टा यह सोचने लगा—मैंने भूल की कि अवधनरेश को जीवित जाने दिया। यह बहुत बुरा हुआ। वह जीवित है, यह जानकर ही प्रजा का रुख उसकी ओर है, क्योंकि अभी लोगो को उसकी तरफ से आशा है। ऐसी स्थिति मे उसे मरवा डालना ही उचित होगा। फिर न होगा बास न बजेगी बासुरी। इस प्रकार निश्चय करके उसने घोषणा कर दी कि जो कोई अवधेश का मस्तक काट कर लाएगा, उसे सवा मन सोना दिया जायगा।

राजा की यह घोषणा सुनकर प्रजा दग रह गई। राजा की और अधिक निन्दा होने लगी। उधर अवधनरेश तप करता हुआ जगल मे घूमा करता था। वह अपनी स्थिति के प्रति असतुष्ट नही था। राज्य त्यागने का उसे

कपड़े पहले बैठी है ! यह देखकर राजा ने कहा मेरे जीवित रहते काले कपड़े क्यों पहिने है ?

रानी ने तमक कर कहा— आपका जीवित रहना और न रहना एक समान हो गया है । बल्कि मेरी समझ में अपयशमय जीवन की अपेक्षा यशोमय मृत्यु अधिक श्रेयस्कर होती है । आप अपनी प्रजा को तो सुख दे नही सके और अवध की प्रजा से सुख देने वाला राजा आपने छीन लिया ! अवध की प्रजा का सुख नष्ट करके और उसे दुखी करके आपने क्या पा लिया ? आज कोई भी समझदार व्यक्ति आपके इस कार्य की सराहना नही करता । सभी लोग एक स्वर से इस अन्याय, अत्याचार की निन्दा कर रहे हैं ।

रानी की बात सुनकर राजा को सद्बुद्धि आनी चाहिये थी मगर उसे सद्बुद्धि नही आई । वह उल्टा यह सोचने लगा—मैंने भूल की कि अवधनरेश को जीवित जाने दिया । यह बहुत बुरा हुआ । वह जीवित है, यह जानकर ही प्रजा का रुख उसकी ओर है, क्योकि अभी लोगो को उसकी तरफ से आशा है । ऐसी स्थिति मे उसे मरवा डालना ही उचित होगा । फिर न होगा बास न बजेगी बासुरी । इस प्रकार निश्चय करके उसने घोपणा कर दी कि जो कोई अवधेश का मस्तक काट कर लाएगा, उसे सवा मन सोना दिया जायगा ।

राजा की यह घोपणा सुनकर प्रजा दग रह गई । राजा की और अधिक निन्दा होने लगी । उधर अवधनरेश तप करता हुआ जगल मे घूमा करता था । वह अपनी स्थिति के प्रति असतुष्ट नही था । राज्य त्यागने का उसे

जंगलियों की तरह उसे भी एक जगली समझ लिया। उसने उसे आवाज देकर पूछा—'अरे भाई ! अयोध्या का रास्ता कौन–सा है ?'

अवधनरेश—अयोध्या क्यों जा रहे हो ?

वणिक्—मेरा जहाज डूब गया है। मेरे सिर पर कर्ज चढा हुआ है। चाहता हूं, किसी उपाय से कर्ज उतर जाये तो अच्छा है। लेकिन मेरे पास पूजी नही है। पूजी हो तो अपनी बुद्धि से रुपया कमा कर कर्ज चुका सकता हूं। अयोध्या के महाराज के पास इसी प्रयोजन से जा रहा हूं। आशा है वह मेरा दुख दूर करेंगे।

अवधनरेश सोचने लगे—लोग अभी तक अवध और अवधनरेश को भूले नही हैं। प्रकट मे उन्होने कहा–भाई, अयोध्या का राजा तो काशीनरेश को अपना राज्य देकर जगल मे चला गया है। इस समय अयोध्या मे काशीनरेश का ही राज्य है।

यह दुसवाद सुनकर वणिक् को बडा दुख हुआ। अवधनरेश ने उसके मन के भाव को समझ लिया। जिसके अन्तकरण मे दया का वास होता है, वह किसी को दुखी नही देख सकता। दुखी को देखते ही उसका हृदय पिघल जाता है और अपने सर्वस्व को त्याग कर भी वह दूसरे का दुख दूर करने की भरसक चेष्टा करता है।

अवधनरेश ने कहा—भाई, अगर तेरा काम सवा मन सोने से चल सकता है तो मैं दिला सकता हूं।

वणिक् को पहले तो विश्वास नहीं हुआ। वह आख

जंगलियों की तरह उसे भी एक जगली समझ लिया। उसने उसे आवाज देकर पूछा—'अरे भाई ! अयोध्या का रास्ता कौन-सा है ?'

अवधनरेश—अयोध्या क्यों जा रहे हो ?

वणिक्—मेरा जहाज डूब गया है। मेरे सिर पर कर्ज चढा हुआ है। चाहता हूं, किसी उपाय से कर्ज उतर जाये तो अच्छा है। लेकिन मेरे पास पूजी नही है। पूजी हो तो अपनी बुद्धि से रुपया कमा कर कर्ज चुका सकता हूं। अयोध्या के महाराज के पास इसी प्रयोजन से जा रहा हूं। आशा है वह मेरा दुख दूर करेंगे।

अवधनरेश सोचने लगे—लोग अभी तक अवध और अवधनरेश को भूले नही हैं। प्रकट मे उन्होने कहा—भाई, अयोध्या का राजा तो काशीनरेश को अपना राज्य देकर जगल मे चला गया है। इस समय अयोध्या मे काशीनरेश का ही राज्य है।

यह दुसवाद सुनकर वणिक् को बडा दुख हुआ। अवधनरेश ने उसके मन के भाव को समझ लिया। जिसके अन्तकरण मे दया का बास होता है, वह किसी को दुखी नही देख सकता। दुखी को देखते ही उसका हृदय पिघल जाता है और अपने सर्वस्व को त्याग कर भी वह दूसरे का दुख दूर करने की भरसक चेष्टा करता है।

अवधनरेश ने कहा—भाई, अगर तेरा काम सवा मन सोने से चल सकता है तो मैं दिला सकता हूं।

वणिक् को पहले तो विश्वास नही हुआ। वह आख

काशीनरेश को जान पड़ा, जैसे वह सपना देख रहा हो। उसे अपनी आखो और अपने कानों पर विश्वास नही हुआ। चकित भाव से उसने पूछा—क्या अवधनरेश तुम्ही हो ?

अवधनरेश–अभी बहुत दिन नही हुए, तब मैं आपसे मिला था। क्या आप इतनी जल्दी मुझे भूल गये ? उस दिन मैं अकेला आपके पास आया था। मैने आपसे कहा था, आपको अवध का राज्य चाहिए तो ले लीजिए। लेकिन मेरी प्रजा का पालन उसी प्रकार कीजिए जैसे मैं कर रहा हू। याद तो होगा ही आपको। आप राजा हैं। आपको कोई बात इतनी जल्दी नही भूल जाना चाहिए।

काशीनरेश को उस दिन की सभी बातें स्मरण हो आई। उसका हृदय सहसा बदल गया। विस्मित और चकित भाव से उसने कहा—यह तो मुझे याद आया कि उस दिन आप ही अपना राज्य मुझे सौंपने आये थे, मगर मैं यह नही समझ सका कि आप इस व्यक्ति के लिए अपना सिर देने क्यों आये हैं ? जिस सहज भाव से उस दिन आपने राज्य दे दिया था और उसके लिए हृदय में किसी प्रकार की दुविधा नही की थी, कोई सकोच नही किया था, उसी सहज भाव से आज अपना सिर देने के लिए आप आये हैं। यह बात मेरी समझ में नही आ रही है। उस दिन मैंने समझा था कि अवधनरेश कायर है। यह युद्ध करने से डरता है और इसी कारण अपने प्राण बचाने के लिए राज्य सौप रहा है, पर आज ऐसा नही सोच सकता। स्वेच्छापूर्वक सिर देने वाला पुरुष कायर नही कहा जा सकता। ऐसा करने के लिए असाधारण वीरता और निस्पृ-

काशीनरेश को जान पड़ा, जैसे वह सपना देख रहा हो। उसे अपनी आखो और अपने कानों पर विश्वास नही हुआ। चकित भाव से उसने पूछा—क्या अवधनरेश तुम्ही हो?

अवधनरेश–अभी बहुत दिन नही हुए, तब मैं आपसे मिला था। क्या आप इतनी जल्दी मुझे भूल गये? उस दिन मैं अकेला आपके पास आया था। मैने आपसे कहा था, आपको अवध का राज्य चाहिए तो ले लीजिए। लेकिन मेरी प्रजा का पालन उसी प्रकार कीजिए जैसे मैं कर रहा हू। याद तो होगा ही आपको। आप राजा हैं। आपको कोई बात इतनी जल्दी नही भूल जाना चाहिए।

काशीनरेश को उस दिन की सभी बातें स्मरण हो आईं। उसका हृदय सहसा बदल गया। विस्मित और चकित भाव से उसने कहा—यह तो मुझे याद आया कि उस दिन आप ही अपना राज्य मुझे सौंपने आये थे, मगर मैं यह नही समझ सका कि आप इस व्यक्ति के लिए अपना सिर देने क्यों आये हैं? जिस सहज भाव से उस दिन आपने राज्य दे दिया था और उसके लिए हृदय में किसी प्रकार को दुविधा नही की थी, कोई सकोच नही किया था, उसी सहज भाव से आज अपना सिर देने के लिए आप आये हैं। यह बात मेरी समझ में नही आ रही है। उस दिन मैंने समझा था कि अवधनरेश कायर है। यह युद्ध करने से डरता है और इसी कारण अपने प्राण बचाने के लिए राज्य सौप रहा है, पर आज ऐसा नही सोच सकता। स्वेच्छापूर्वक सिर देने वाला पुरुष कायर नही कहा जा सकता। ऐसा करने के लिए असाधारण वीरता और निस्पृ-

श्यकता है। मैं सोचता हूं, एक दिन यह सिर वृथा ही जायेगा। आज इससे एक व्यक्ति को धन मिलता है और उसका दुःख दूर होता है तो इसे आज ही देने मे क्या हर्ज है ? जब मरना हो है तो किसी का दुःख मिटा कर ही क्यो न मरूँ ?

दया और परोपकार का यह कितना उत्कृष्ट और उज्ज्वल उदाहरण है ? अवधनरेश दूसरे का दुःख मिटाने के लिए अपना सिर भी निछावर करने तैयार है आप लोगो मे कोई ऐसा तो नही है जो चार-आठ आने के लिए झूठ बोलता हो और धर्म को धोखा देता हो ? आज अधिकाश लोग ऊपरी झपका दिखलाते हैं, धार्मिकता का प्रदर्शन करते हैं, लेकिन कौन कह सकता है कि वे सच्ची धार्मिकता का पालन कितना करते हैं ? जिसे धर्म का वास्तविक ज्ञान होगा और जो उसका पालन करना चाहेगा, उसे यह शरीर तो मिट्टी का दिखाई देगा। वह इस शरीर को सदा नाशवान् समझेगा। धर्म को वह सजीव और अमर मानेगा।

अवधनरेश ने काशीराज को अपना सिर देने का प्रयोजन समझा दिया। अवधनरेश की बात सुनकर काशी-राज सिंहासन से नीचे उतर आया। उसने अपने हाथो अपने सिर का मुकुट उतारा और अवधनरेश के मस्तक पर रख दिया। वह बोला 'अवधनरेश की जय हो !'

नगर मे यह बात फैल गई कि अवध के राजा अपना मस्तक देने आये हैं और सीधे राजा के पास गये हैं। यह बात सुनते ही लोग आपस मे कहने लगे—वह दुष्ट फौरन

श्यकता है। मैं सोचता हूं, एक दिन यह सिर वृथा ही जायेगा। आज इससे एक व्यक्ति को धन मिलता है और उसका दुःख दूर होता है तो इसे आज ही देने मे क्या हर्ज है ? जब मरना ही है तो किसी का दुःख मिटा कर ही क्यो न मरू ?

दया और परोपकार का यह कितना उत्कृष्ट और उज्ज्वल उदाहरण है ? अवधनरेश दूसरे का दुःख मिटाने के लिए अपना सिर भी निछावर करने तैयार है आप लोगो मे कोई ऐसा तो नही है जो चार-आठ आने के लिए झूठ बोलता हो और धर्म को धोखा देता हो ? आज अधिकाश लोग ऊपरी भपका दिखलाते हैं, धार्मिकता का प्रदर्शन करते हैं, लेकिन कौन कह सकता है कि वे सच्ची धार्मिकता का पालन कितना करते हैं ? जिसे धर्म का वास्तविक ज्ञान होगा और जो उसका पालन करना चाहेगा, उसे यह शरीर तो मिट्टी का दिखाई देगा। वह इस शरीर को सदा नाशवान् समझेगा। धर्म को वह सजीव और अमर मानेगा।

अवधनरेश ने काशीराज को अपना सिर देने का प्रयोजन समझा दिया। अवधनरेश की बात सुनकर काशीराज सिहासन से नीचे उतर आया। उसने अपने हाथो अपने सिर का मुकुट उतारा और अवधनरेश के मस्तक पर रख दिया। वह बोला 'अवधनरेश की जय हो !'

नगर मे यह बात फैल गई कि अवध के राजा अपना मस्तक देने आये हैं और सीधे राजा के पास गये हैं। यह बात सुनते ही लोग आपस मे कहने लगे—वह दुष्ट फौरन

दानं दमश्च यज्ञश्च स्वाध्यायस्तप आर्जवम् ।
अहिंसा सत्यमक्रोधस्त्यागः शान्तिरपैशुनम् ।
दया भूते ष्वलोलुप्त्वं मार्दवं ह्रीरचापलम् ।
तेजः क्षमा धृतिः शौचमद्रोहो नातिमानिता ।
भवन्ति सम्पदं दैवीमभिजातस्य भारत ।
गीता, अ० १-५,

यह दैवी-सम्पत्ति है। जिसके सस्कार अच्छे होते हैं, उसी को यह सम्पत्ति मिलती है। भगवान् ऋषभदेव ने अपने पुत्रो को इसी सम्पत्ति का बल दिया था। यही सम्पत्ति व्यक्ति को सुखी, समृद्ध और भाग्यशाली बनाती है। अगर आप अपने जीवन को सफल बनाना चाहते हैं तो इस सम्पत्ति को ही प्राप्त करने का प्रयत्न कीजिए। कम से कम इतना तो अवश्य ध्यान रखिए कि इस सम्पत्ति का घात होने पर अगर भौतिक सम्पत्ति मिलती हो तो भी इस सम्पत्ति का घात मत होने दीजिए और उस भौतिक सम्पत्ति को ठुकरा दीजिए। निश्चयपूर्वक समझ लीजिए कि दैवी सम्पत्ति ससार मे अनुपम और असाधारण बल है। जिसे यह बल प्राप्त हो जाता है उसके लिए ससार में कोई भी शक्ति ऐसी नही रह जाती जो अजेय हो। इसी शक्ति से आत्मा ऊर्ध्वगामी बनता है और अनन्त कल्याण के धाम को प्राप्त करता है।

आपको जो कथा अभी सुनाई है, उस पर विचार कीजिए और सोचिये कि आप अवधनरेश की तरह अन्तिम विजय चाहते हैं या कल्पित और क्षणिक विजय के आभास को पाकर ही सतुष्ट हो जाना चाहते हैं? अगर

दानं दमश्च यज्ञश्च स्वाध्यायस्तप आर्जवम् ।
अहिंसा सत्यमक्रोधस्त्यागः शान्तिरपैशुनम् ।
दया भूते ष्वलोलुप्त्व मार्दव ह्रीरचापलम् ।
तेजः क्षमा धृतिः शौचमद्रोहो नातिमानिता ।
भवन्ति सम्पद दैवीमभिजातस्य भारत ।
गीता, अ० १-५,

यह दैवी-सम्पत्ति है। जिसके सस्कार अच्छे होते हैं, उसी को यह सम्पत्ति मिलती है। भगवान् ऋषभदेव ने अपने पुत्रो को इसी सम्पत्ति का बल दिया था। यही सम्पत्ति व्यक्ति को सुखी, समृद्ध और भाग्यशाली बनाती है। अगर आप अपने जीवन को सफल बनाना चाहते हैं तो इस सम्पत्ति को ही प्राप्त करने का प्रयत्न कीजिए। कम से कम इतना तो अवश्य ध्यान रखिए कि इस सम्पत्ति का घात होने पर अगर भौतिक सम्पत्ति मिलती हो तो भी इस सम्पत्ति का घात मत होने दीजिए और उस भौतिक सम्पत्ति को ठुकरा दीजिए। निश्चयपूर्वक समझ लीजिए कि दैवी सम्पत्ति ससार मे अनुपम और असाधारण बल है। जिसे यह बल प्राप्त हो जाता है उसके लिए ससार में कोई भी शक्ति ऐसी नही रह जाती जो अजेय हो। इसी शक्ति से आत्मा ऊर्ध्वगामो बनता है और अनन्त कल्याण के धाम को प्राप्त करता है।

आपको जो कथा अभी सुनाई है, उस पर विचार कीजिए और सोचिये कि आप अवधनरेश की तरह अन्तिम विजय चाहते हैं या कल्पित और क्षणिक विजय के आभास को पाकर ही सतुष्ट हो जाना चाहते हैं ? अगर

कठिन कर्म

चन्द्रप्रभो ! जग जीवन अन्तर्यामी ।

यह भगवान् चन्द्रप्रभ की प्रार्थना है। प्रार्थना करते हुए भक्त कहता है—

जय जय जगतशिरोमणि ।

हे जगत् के शिरोमणि ! हे जगदुत्कृष्ट ! तेरा जय-जयकार हो। इस कथन पर से विचार उत्पन्न होता है कि भक्त के हृदय मे यह विचार क्यो आया ? और जो जगत् का शिरोमणि है, उसका जय-जयकार करने से क्या लाभ है। इसके अतिरिक्त जो परमात्मा पूर्ण वीतराग हो चुके हैं, कृतकृत्य हो चुके हैं, समस्त प्रकृति को जीतकर जगत्–शिरोमणि बन चुके हैं, उन्हे क्या करना शेष रह गया है—किसे जीतना बाकी रहा है, जिसके लिए उनका जय-जयकार किया जाना है।

इस प्रश्न के उत्तर मे भक्तजनो का कहना है कि जिन्होने पूर्ण विजय प्राप्त कर ली है, जिन्होने पूर्णता प्राप्त कर ली है, उन्ही की जय मनानी चाहिए। उन्ही की जय से ससार का कल्याण हो सकता है। वल्कि उन्ही की जय मे ससार का कल्याण छिपा हुआ है। घड़ा जब तक

कठिन कर्म

चन्द्रप्रभो ! जग जीवन अन्तर्यामी ।

यह भगवान् चन्द्रप्रभ की प्रार्थना है। प्रार्थना करते हुए भक्त कहता है—

जय जय जगतशिरोमणि ।

हे जगत् के शिरोमणि ! हे जगदुत्कृष्ट ! तेरा जय-जयकार हो । इस कथन पर से विचार उत्पन्न होता है कि भक्त के हृदय मे यह विचार क्यो आया ? और जो जगत् का शिरोमणि है, उसका जय-जयकार करने से क्या लाभ है । इसके अतिरिक्त जो परमात्मा पूर्ण वीतराग हो चुके हैं, कृतकृत्य हो चुके हैं, समस्त प्रकृति को जीतकर जगत्–शिरोमणि बन चुके हैं, उन्हे क्या करना शेप रह गया है—किसे जीतना बाकी रहा है, जिसके लिए उनका जय-जयकार किया जाना है ।

इस प्रश्न के उत्तर मे भक्तजनो का कहना है कि जिन्होने पूर्ण विजय प्राप्त कर ली है, जिन्होने पूर्णता प्राप्त कर ली है, उन्ही की जय मनानी चाहिए । उन्ही की जय से ससार का कल्याण हो सकता है । वल्कि उन्ही की जय मे ससार का कल्याण छिपा हुआ है । घड़ा जब तक

आदर्श अक्षर को दूसरे बनाने वाले अक्षर से कुछ भी लेना-देना नही है, उसी प्रकार परमात्मा को भी ससार से कुछ लेना-देना नही है। ससार से उसका कोई सरोकार नही है। फिर भी वह पूर्ण पुरुप ससार के जीवो को पूर्णता दिलाने मे समर्थ है। वह पूर्णता प्राप्त करने मे सहायक होता है। इसी कारण उसका जयजयकार किया जाता है। इसीलिए भक्तजन कहते है—

जय जय जगत—शिरोमणि !

परमात्मा कृतकृत्य हो चुके हैं। उन्होने चरम विजय प्राप्त कर ली है। हमारे जयजयकार करने से परमात्मा की जय नही होती है। फिर भी परमात्मा की जय चाहना अपनी नम्रता प्रकट करना है। इस प्रकार कहकर भक्त लोग आगे कहते हैं—प्रभो ! यद्यपि तू पूर्ण है। तू ने सर्वोत्कृष्ट विजय प्राप्त कर ली है। लेकिन अभी तक तुझसे दूर पडा हूं। इसका कारण मेरा भ्रम ही है। मैं सोचता हू कि परमात्मा क्या करता है ! मैं स्वय कमाता हू और स्वय खाता हूं ! इसमे परमात्मा का क्या उपकार है ? इस प्रकार के भ्रमपूर्ण विचार के कारण ही मैं तुझसे दूर पडा हूं। लेकिन अब मुझे यह विचार आ रहा है कि जिन विषयभोगो के भ्रमजाल मे पडकर मैं परमात्मा को भूल रहा हू उन विषयो से मुझे कभी तृप्ति नही हो सकती। उदाहरणार्थ कल पेट भर भोजन किया था, लेकिन आज फिर भोजन करना पडेगा ! ससार के अन्य पदार्थों के विषय मे भी ऐसी ही बात है। ससार मे कोई पदार्थ ऐसा नही जिसे आत्मा ने न भोगा हो। प्रत्येक पदार्थ को

आदर्श अक्षर को दूसरे बनाने वाले अक्षर से कुछ भी लेना-देना नही है, उसी प्रकार परमात्मा को भी ससार से कुछ लेना-देना नही है। ससार से उसका कोई सरोकार नही है। फिर भी वह पूर्ण पुरुप ससार के जीवो को पूर्णता दिलाने मे समर्थ है। वह पूर्णता प्राप्त करने मे सहायक होता है। इसी कारण उसका जयजयकार किया जाता है। इसीलिए भक्तजन कहते है—

जय जय जगत—शिरोमणि !

परमात्मा कृतकृत्य हो चुके हैं। उन्होने चरम विजय प्राप्त कर ली है। हमारे जयजयकार करने से परमात्मा की जय नही होती है। फिर भी परमात्मा की जय चाहना अपनी नम्रता प्रकट करना है। इस प्रकार कहकर भक्त लोग आगे कहते हैं—प्रभो ! यद्यपि तू पूर्ण है। तू ने सर्वोत्कृष्ट विजय प्राप्त कर ली है। लेकिन अभी तक तुझसे दूर पडा हूं। इसका कारण मेरा भ्रम ही है। मैं सोचता हू कि परमात्मा क्या करता है ! मैं स्वय कमाता हू और स्वय खाता हूं ! इसमे परमात्मा का क्या उपकार है ? इस प्रकार के भ्रमपूर्ण विचार के कारण ही मैं तुझसे दूर पडा हूं। लेकिन अब मुझे यह विचार आ रहा है कि जिन विषयभोगो के भ्रमजाल मे पडकर मैं परमात्मा को भूल रहा हू उन विषयो से मुझे कभी तृप्ति नही हो सकती। उदाहरणार्थ कल पेट भर भोजन किया था, लेकिन आज फिर भोजन करना पडेगा ! ससार के अन्य पदार्थों के विषय मे भी ऐसी ही बात है। ससार मे कोई पदार्थ ऐसा नही जिसे आत्मा ने न भोगा हो। प्रत्येक पदार्थ को

प्रश्न होता है कि क्या परमात्मा है, जो उसके साथ सवध जोडा जाये ? इस प्रश्न का उत्तर यह है कि इच्छा उसी वस्तु की होती है जिसका अस्तित्व हो। जिस वस्तु का अस्तित्व नही होता उसकी इच्छा भी नही होती। भोजन ही न होता तो उसे खाने की इच्छा कहां से आती ? इसी के अनुसार भगवान् अनन्त न होते तो उन्हे प्राप्त करने की इच्छा भी न होती। भगवान् को प्राप्त करने की इच्छा होती है, इससे स्पष्ट है कि भगवान् हैं। यह वात दूसरी है कि जिस प्रकार भोजन दूर हो और इस कारण उसे प्रयत्न के द्वारा प्राप्त करना पडे, लेकिन भूख लगने के कारण यह विश्वास तो है ही कि ससार में भोजन भी है और भोजन दूर है इस कारण वह प्रयत्न के द्वारा प्राप्त किया जा सकता है। जव दूर होने पर भी भोजन प्राप्त किया जा सकता है तो क्या भगवान् को प्रयत्न द्वारा प्राप्त नही किया जा सकता ? जैसे श्रमसाध्य होने पर भी भोजन मिलता है उसी प्रकार दूर होने पर भी भगवान् प्रयत्न करने से अवश्य मिलता है। अतएव जिसके अन्त.करण मे परमात्मा को प्राप्त करने की भावना जागेगी, वह परमात्मा की ओर आकर्पित होगा, उसे पाने के लिए प्रयत्न करेगा और अन्त मे उसे परमात्मा मिले विना नही रहेगा।

कल्पना करो, एक आदमी को भूख लगी है। उसे आप कितने ही प्रलोभन दें सतुष्ट करने का कितना ही प्रयत्न करें, फिर भी भोजन किये विना उसे सतोष नही होगा। भूख मिटने पर ही उसे सतोष होगा और भूख भोजन से ही मिट सकेगी। आप अपने शरीर पर लाखों

प्रश्न होता है कि क्या परमात्मा है, जो उसके साथ सबध जोडा जाये ? इस प्रश्न का उत्तर यह है कि इच्छा उसी वस्तु की होती है जिसका अस्तित्व हो। जिस वस्तु का अस्तित्व नही होता उसकी इच्छा भी नही होती। भोजन ही न होता तो उसे खाने की इच्छा कहां से आती ? इसी के अनुसार भगवान् अनन्त न होते तो उन्हे प्राप्त करने की इच्छा भी न होती। भगवान् को प्राप्त करने की इच्छा होती है, इससे स्पष्ट है कि भगवान् हैं। यह बात दूसरी है कि जिस प्रकार भोजन दूर हो और इस कारण उसे प्रयत्न के द्वारा प्राप्त करना पडे, लेकिन भूख लगने के कारण यह विश्वास तो है ही कि ससार में भोजन भी है और भोजन दूर है इस कारण वह प्रयत्न के द्वारा प्राप्त किया जा सकता है। जब दूर होने पर भी भोजन प्राप्त किया जा सकता है तो क्या भगवान् को प्रयत्न द्वारा प्राप्त नही किया जा सकता ? जैसे श्रमसाध्य होने पर भी भोजन मिलता है उसी प्रकार दूर होने पर भी भगवान् प्रयत्न करने से अवश्य मिलता है। अतएव जिसके अन्त.करण मे परमात्मा को प्राप्त करने की भावना जागेगी, वह परमात्मा की ओर आकर्पित होगा, उसे पाने के लिए प्रयत्न करेगा और अन्त मे उसे परमात्मा मिले विना नही रहेगा।

कल्पना करो, एक आदमी को भूख लगी है। उसे आप कितने ही प्रलोभन दें सतुष्ट करने का कितना ही प्रयत्न करें, फिर भी भोजन किये विना उसे सतोष नही होगा। भूख मिटने पर ही उसे सतोष होगा और भूख भोजन से ही मिट सकेगी। आप अपने शरीर पर लाखों

सुधारने का प्रयत्न किया जाता है और सुधार हो भी जाता है। इसी आधार पर यह भी मानो कि आत्मा भी सुधर सकता है, केवल प्रयत्न करने की आवश्यकता है। सासारिक पदार्थों का सुधार कर लेना ही काफी नही है। अपनी आत्मा का सुधार करो। आत्मा का सुधार ही सच्चा सुधार है। जब आत्मा सुधर जायेगा तो उसे परमात्मा की प्राप्ति किये बिना किसी भी प्रकार सतोष नही होगा। वह पूर्ण प्रयत्न करके परमात्मा को प्राप्त करके ही दम लेगा।

आजकल के लोगो को आत्मा के सुधार के लिए किसी कठिन क्रिया के करने मे घबराहट होती है। वे जरा-सी कठिनाई सामने आने पर हिम्मत हारने लगते हैं। मगर कठिनाई मे पडने की अनिवार्य आवश्यकता ही कहा है? ज्ञानियो ने इसके लिए बहुत ही सरल उपाय बतलाये हैं। उनके बतलाये उपाय करने से कठिनाई नही झेलनी पडती और आत्मा का सुधार भी हो जाता है। ज्ञानी-पुरुषो का कथन है कि तुम्हे जो कठिनाई दिखलाई पड़ती है, वह अज्ञान के कारण ही है। अज्ञान को दूर करदो तो कुछ भी कठिनाई नही रहेगी। शास्त्र में जो उपदेश दिया गया है वह अज्ञान मिटाने के लिए ही दिया गया है। उस उपदेश को सुनकर अज्ञान हटाओ। फिर देखोगे कि तुम्हारे आगे की सभी कठिनाइया समाप्त हो गई हैं और तुम्हारा मार्ग एकदम साफ और सुगम बन गया है।

अज्ञान के कारण अकेले बाल जीव ही नही किन्तु कभी-कभी महापुरुप भी चक्कर में पड़ जाते हैं और फिर

सुधारने का प्रयत्न किया जाता है और सुधार हो भी जाता है। इसी आधार पर यह भी मानो कि आत्मा भी सुधर सकता है, केवल प्रयत्न करने की आवश्यकता है। सासारिक पदार्थों का सुधार कर लेना ही काफी नही है। अपनी आत्मा का सुधार करो। आत्मा का सुधार ही सच्चा सुधार है। जब आत्मा सुधर जायेगा तो उसे परमात्मा की प्राप्ति किये बिना किसी भी प्रकार सतोष नही होगा। वह पूर्ण प्रयत्न करके परमात्मा को प्राप्त करके ही दम लेगा।

आजकल के लोगो को आत्मा के सुधार के लिए किसी कठिन क्रिया के करने मे घबराहटहोती है। वे जरासी कठिनाई सामने आने पर हिम्मत हारने लगते हैं। मगर कठिनाई मे पडने की अनिवार्य आवश्यकता ही कहा है? ज्ञानियो ने इसके लिए बहुत ही सरल उपाय बतलाये हैं। उनके बतलाये उपाय करने से कठिनाई नही झेलनी पडती और आत्मा का सुधार भी हो जाता है। ज्ञानीपुरुषो का कथन है कि तुम्हे जो कठिनाई दिखलाई पड़ती है, वह अज्ञान के कारण ही है। अज्ञान को दूर करदो तो कुछ भी कठिनाई नही रहेगी। शास्त्र में जो उपदेश दिया गया है वह अज्ञान मिटाने के लिए ही दिया गया है। उस उपदेश को सुनकर अज्ञान हटाओ। फिर देखोगे कि तुम्हारे आगे की सभी कठिनाइया समाप्त हो गई हैं और तुम्हारा मार्ग एकदम साफ और सुगम बन गया है।

अज्ञान के कारण अकेले बाल जीव ही नही किन्तु कभी-कभी महापुरुष भी चक्कर मे पड़ जाते हैं और फिर

महाभारत के अनुसार जब पाण्डवों को बनवास दिया गया था और द्रौपदी को नग्न करने का प्रयास किया गया था, उस समय कृष्ण द्वारिका मे नही थे। वे कही बाहर गये हुए थे। कृष्ण जब लौटकर द्वारिका पहुचे तो वहां के वृद्धजन रो-रोकर कहने लगे—पांडवो पर बडी कड़ी मुसीबत आ पडी है और वे बनवास भोग रहे हैं। सरल हृदय पाडव ऐसी विपदा मे हैं कि कुछ कहा नही जा सकता। वे वीर हैं और सज्जन हैं। लेकिन दुष्ट कौरवो ने उन पर भीषण अत्याचार किया है। यहा तक कि द्रौपदी को भरी सभा मे नग्न करने का भी उन्होने प्रयत्न किया। भले ही उनका प्रयत्न सफल नही हुआ फिर भी इससे उनकी दुर्भावना कम नही हो सकती। पाडवो को बनवास स्वीकार करना पड़ा है!

कृष्ण ने पाण्डवो के वन जाने का समाचार सुनकर पूछा— पाण्डवों का ऐसा क्या अपराध था, जिसके कारण उन्हे वन जाना पड़ा और द्रौपदी की दुर्गति हुई? वृद्धजनो ने उत्तर दिया—अन्याय के सामने अपराध होने या न होने का प्रश्न ही कहा उठता है? जिसे अन्याय करना है, अपना स्वार्थ साधना है, वह यह कब देखता है इसने अन्याय किया है या नही किया है?

कृष्ण ने पूछा—इस समय वे कहां है?

वृद्धजन- वन में वनवासी लोगो की तरह भटकते फिरते हैं।

यह कथन सुनकर कृष्णजी कुछ मुसकराये। वृद्धजनो की समझ में नही आया कि कृष्णजी दुःखी होने के बदले

महाभारत के अनुसार जब पाण्डवों को बनवास दिया गया था और द्रौपदो को नग्न करने का प्रयास किया गया था, उस समय कृष्ण द्वारिका मे नही थे । वे कही बाहर गये हुए थे । कृष्ण जव लौटकर द्वारिका पहुचे तो वहां के वृद्धजन रो-रोकर कहने लगे—पांडवो पर वडी कड़ी मुसीबत आ पडी है और वे बनवास भोग रहे हैं । सरल हृदय पाडव ऐसी विपदा मे हैं कि कुछ कहा नही जा सकता । वे वीर हैं और सज्जन हैं । लेकिन दुष्ट कौरवो ने उन पर भीषण अत्याचार किया है । यहा तक कि द्रौपदी को भरी सभा मे नग्न करने का भी उन्होने प्रयत्न किया ! भले ही उनका प्रयत्न सफल नही हुआ फिर भी इससे उनकी दुर्भावना कम नही हो सकती । पाडवो को बनवास स्वीकार करना पड़ा है !

कृष्ण ने पाण्डवो के वन जाने का समाचार सुनकर पूछा— पाण्डवों का ऐसा क्या अपराध था, जिसके कारण उन्हे वन जाना पड़ा और द्रौपदी की दुर्गति हुई ? वृद्धजनो ने उत्तर दिया—अन्याय के सामने अपराध होने या न होने का प्रश्न ही कहा उठता है ? जिसे अन्याय करना है, अपना स्वार्थ साधना है, वह यह कब देखता है इसने अन्याय किया है या नही किया है ?

कृष्ण ने पूछा—इस समय वे कहां है ?

वृद्धजन- वन में वनवासी लोगो की तरह भटकते फिरते हैं ।

यह कथन सुनकर कृष्णजी कुछ मुसकराये । वृद्धजनो

मे पडकर इन दिनो वह बहुत परेशान हो उठी थी। आज वह नगर छोडकर जगल मे और महल छोड़कर झोपड़ो मे रहती है। पट्रस व्यजन के वदले उसे जगल के फल-फूलो पर निर्वाह करना पडता है। आज उसे किसी भी प्रकार की सुख-सुविधा नही है। उसे लगता है, मानो उसके जीते जी ही जीवन बदल गया है! यह सब जानते हुए भी कृष्णजी उससे पूछ रहे हैं— 'कृष्णा आनन्द मे तो हो ?' आखिर इस प्रश्न का रहस्य क्या है ? इस रहस्य का पता उन्ही से लग सकता है।

प्रश्न के उत्तर मे द्रौपदी कहने लगी— कृष्णजी ! आपने मुझे अपनी बहिन वनाया है। लेकिन आपकी इस बहिन की आजकल क्या दशा हो रही है यह तो आप प्रत्यक्ष देख रहे हैं। आपकी बहिन की जैसी दुर्दशा हुई है वैसी शायद किसी की न हुई होगी। दुष्ट कौरवो ने मेरी ऐसी दशा की है कि कहा नही जा सकता। भरी सभा में उन्होने मेरी लाज छीन लेनी चाही। वे मुझे नग्न करना चाहते थे, मगर न जाने किस अदृश्य शक्ति ने मेरी रक्षा की। मैं सर्वथा निर्दोष थी और हू। फिर भी पापी दुशा-सन मुझे महल मे से सभा मे खीचे लाया। उसने मेरे सिर के केश पकड कर खीचे हैं और इस प्रकार मेरे केशो को मलीन कर दिया है। राजसभा मे साधारण कुल की स्त्री भी नही वुलाई जाती और केश तो किसी के खीचे ही नही जाते। मगर आपकी बहिन के साथ यह सब दुर्व्यवहार किया गया। मैंने सभा मे प्रश्न किया था— आप सभा मे उपस्थित गुरुजन मेरे लिए पूज्य हैं। इसलिए मैं आपसे पूछती हूं कि धर्मराज पहले अपने आपको हारे

मे पडकर इन दिनो वह बहुत परेशान हो उठी थी । आज वह नगर छोडकर जगल मे और महल छोड़कर झोपड़ो मे रहती है । पट्रस व्यजन के वदले उसे जगल के फल-फूलो पर निर्वाह करना पडता है । आज उसे किसी भी प्रकार की सुख-सुविधा नही है । उसे लगता है, मानो उसके जीते जी ही जीवन बदल गया है ! यह सब जानते हुए भी कृष्णजी उससे पूछ रहे हैं— 'कृष्णा आनन्द मे तो हो ?' आखिर इस प्रश्न का रहस्य क्या है ? इस रहस्य का पता उन्ही से लग सकता है ।

प्रश्न के उत्तर मे द्रौपदी कहने लगी— कृष्णजी ! आपने मुझे अपनी बहिन वनाया है । लेकिन आपकी इस बहिन की आजकल क्या दशा हो रही है यह तो आप प्रत्यक्ष देख रहे हैं । आपकी बहिन की जैसी दुर्दशा हुई है वैसी शायद किसी की न हुई होगी । दुष्ट कौरवो ने मेरी ऐसी दशा की है कि कहा नही जा सकता । भरी सभा में उन्होने मेरी लाज छीन लेनी चाही । वे मुझे नग्न करना चाहते थे, मगर न जाने किस अदृश्य शक्ति ने मेरी रक्षा की । मैं सर्वथा निर्दोष थी और हू । फिर भी पापी दुशा-सन मुझे महल मे से सभा मे खींच लाया । उसने मेरे सिर के केश पकड कर खीचे हैं और इस प्रकार मेरे केशो को मलीन कर दिया है । राजसभा मे साधारण कुल की स्त्री भी नही वुलाई जाती और केश तो किसी के खीचे ही नही जाते । मगर आपकी बहिन के साथ यह सब दुर्व्यवहार किया गया । मैंने सभा मे प्रश्न किया था— आप सभा मे उपस्थित गुरुजन मेरे लिए पूज्य हैं । इसलिए मैं आपसे पूछती हूं कि धर्मराज पहले अपने आपको हारे

लाज जा रही है। इस कारण मेरी रक्षा करो। मेरी करुण पुकार सुनकर भीम और अर्जुन उठे भी, मगर धर्मराज ने बाह पकडकर दोनों को फिर बैठा दिया। तब मैंने सोचा—'वास्तव मे कोई किसी का नही है।'

हे कृष्ण ! मैं सोचती हूं, आप वहा होते तो मेरी रक्षा अवश्य करते। परन्तु दुर्दैव से आप वहा मौजूद नहीं थे। अतएव मैंने परमात्मा का स्मरण करके कहा—'प्रभो ! मैं तेरी शरण हूं।' इस प्रकार मन ही मन प्रार्थना करके मैंने अपना मन परमात्मा मे लगा दिया। उस समय शरीर पर से भी मैंने ममता हटा ली। मैं अपनी शक्ति भर प्रयत्न कर चुकी थी। पितामह भीष्म जैसे आदर्श पुरुष भी वहां मौजूद थे और पतिदेव भी चुपचाप बैठे थे। तव अकेली मैं क्या कर सकती थी ? इस प्रकार सोचकर मैंने शरीर का ममत्व त्याग दिया। शरीर पर से ममत्व त्याग देने के पश्चात् क्या हुआ, यह मुझे मालूम नही लेकिन मैंने सुना है कि उस समय मेरे शरीर के वस्त्र इतने बढ गये थे कि दुश्शासन खीचते-खीचते थक गया था, पर वह मुझे नग्न नही कर सका। साथ ही सभा मे बहुत क्रान्ति हुई। उस समय मैंने अन्धराज को यह कहते सुना—'हे कुलवधू ! क्षमा करो।' यह आवाज सुनकर मैं अपने आपे मे आई। उस समय मैंने देखा कि सभा मे केवल धृतराष्ट्र ही हैं, और कोई नही है। वे कह रहे हैं–हे कुलवधू ! मेरे पापी पुत्रो को क्षमा करो। मैं तुमसे क्षमा मागता हूं। मैंने उनसे कहा - आप मेरे पूज्य हैं। मैं ही आपसे क्षमा मागती हूं।

इतना कहकर द्रौपदी ने एक लम्बी सांस ली। फिर

लाज जा रही है। इस कारण मेरी रक्षा करो। मेरी करुण पुकार सुनकर भीम और अर्जुन उठे भी, मगर धर्मराज ने बाह पकड़कर दोनों को फिर बैठा दिया। तब मैंने सोचा—'वास्तव मे कोई किसी का नही है।'

हे कृष्ण ! मैं सोचती हूं, आप वहा होते तो मेरी रक्षा अवश्य करते। परन्तु दुर्दैव से आप वहा मौजूद नहीं थे। अतएव मैंने परमात्मा का स्मरण करके कहा—'प्रभो ! मैं तेरी शरण हूं।' इस प्रकार मन ही मन प्रार्थना करके मैंने अपना मन परमात्मा मे लगा दिया। उस समय शरार पर से भी मैंने ममता हटा ली। मैं अपनी शक्ति भर प्रयत्न कर चुकी थी। पितामह भीष्म जैसे आदर्श पुरुष भी वहां मौजूद थे और पतिदेव भी चुपचाप बैठे थे। तव अकेली मैं क्या कर सकती थी ? इस प्रकार सोचकर मैंने शरीर का ममत्व त्याग दिया। शरीर पर से ममत्व त्याग देने के पश्चात् क्या हुआ, यह मुझे मालूम नही लेकिन मैंने सुना है कि उस समय मेरे शरीर के वस्त्र इतने वढ गये थे कि दुश्शासन खीचते-खीचते थक गया था, पर वह मुझे नग्न नही कर सका। साथ ही सभा मे वहुत क्रान्ति हुई। उस समय मैंने अन्धराज को यह कहते सुना—'हे कुलवधू ! क्षमा करो।' यह आवाज सुनकर मैं अपने आपे मे आई। उस समय मैंने देखा कि सभा मे केवल धृतराष्ट्र ही हैं, और कोई नही है। वे कह रहे हैं–हे कुलवधू ! मेरे पापी पुत्रो को क्षमा करो। मैं तुमसे क्षमा मागता हूं। मैंने उनसे कहा - आप मेरे पूज्य हैं। मैं ही आपसे क्षमा मागती हूं।

इतना कहकर द्रौपदी ने एक लम्बी सांस ली। फिर

इनके पीछे क्या रहस्य छिपा हुआ है ! दु खो के पीछे रहे हुए रहस्य का विचार करके मनुष्य को धैर्य रखना चाहिए। तुम दु.खों से घबरा रही हो, मगर दु ख ही तो सुख का बीज है। तुम्हारे इन दु खों मे ही जगत् का कल्याण छिपा है। तुम अपना दु ख देखती हो किन्तु उसके भीतर छिपा कल्याण नही देखती। दुर्योधन पर मुझे किसी प्रकार कोप नही है। मैं सिर्फ यह कहता हूं कि वह मदोन्मत है। उसके पापो का घडा तुम्हारे साथ घोर अन्याय करने से भर गया है। वह तलवार के बल पर सबके ऊपर शासन करना चाहता है। अगर दुर्योधन सब के हृदय मे बैठना चाहता तब तो कोई झझट न होता। इस स्थिति मे उसका व्यवहार इससे उलटा ही होता। मगर वह हृदय मे नही बैठना चाहता–सिर पर सवार होना चाहता है। उसके द्वारा तुम्हे कष्ट क्यो सहन करने पडे और धर्मराज ने तुम्हे इन कष्टो से क्यो नही बचाया, यह तुम नही जानती। इसी कारण तुम दु ख मान रही हो। उस समय मै वहा नही था। कदाचित होता भी तो चुपचाप धर्मराज के पास बैठा रहता और तुम्हे कष्ट से बचाने का प्रयत्न न करता।

द्रौपदी–आह ! क्या आप भी मेरा घोर अपमान बैठ-बैठे देखते रहते ?

कृष्ण—बहिन ! जिसे तुम अपमान कहती हो, उसे अगर मै भी अपमान समझता तो हर्गिज चुपचाप सहन न करता। तुम जानती नही हो, इसी कारण उक्त घटनाओ को अपना अपमान समझती हो और दु.ख मानती हो। जब रहस्य को जान जाओगी तो वे घटनाएं न अपमान

इनके पीछे क्या रहस्य छिपा हुआ है ! दु खो के पीछे रहे हुए रहस्य का विचार करके मनुष्य को धैर्य रखना चाहिए। तुम दु.खों से घबरा रही हो, मगर दुख ही तो सुख का बीज है। तुम्हारे इन दु खों मे ही जगत् का कल्याण छिपा है। तुम अपना दुख देखती हो किन्तु उसके भीतर छिपा कल्याण नही देखती। दुर्योधन पर मुझे किसी प्रकार कोप नही है। मैं सिर्फ यह कहता हूं कि वह मदोन्मत है। उसके पापो का घडा तुम्हारे साथ घोर अन्याय करने से भर गया है। वह तलवार के बल पर सबके ऊपर शासन करना चाहता है। अगर दुर्योधन सब के हृदय मे बैठना चाहता तब तो कोई झझट न होता। इस स्थिति मे उसका व्यवहार इससे उलटा ही होता। मगर वह हृदय मे नही बैठना चाहता–सिर पर सवार होना चाहता है। उसके द्वारा तुम्हे कष्ट क्यो सहन करने पडे और धर्मराज ने तुम्हे इन कष्टो से क्यो नही बचाया, यह तुम नही जानती। इसी कारण तुम दुख मान रही हो। उस समय मैं वहा नही था। कदाचित होता भी तो चुपचाप धर्मराज के पास बैठा रहता और तुम्हे कष्ट से बचाने का प्रयत्न न करता।

द्रौपदी–आह ! क्या आप भी मेरा घोर अपमान बैठ-बैठे देखते रहते ?

कृष्ण—बहिन ! जिसे तुम अपमान कहती हो, उसे अगर मैं भी अपमान समझता तो हर्गिज चुपचाप सहन न करता। तुम जानती नही हो, इसी कारण उत्त घटनाओ को अपना अपमान समझती हो और दु.ख मानती हो। जब रहस्य को जान जाओगी तो वे घटनाए न अपमान

नही चाहिए— धैर्यपूर्वक उसे सहन करना चाहिए । इस प्रकार विचार कर जो पुरुष दु ख के समय दृढता रखता है और विषाद नही करता उसकी आत्मा का कल्याण होता है ।

जव श्रीकृष्ण, द्रौपदी से इस प्रकार कह रहे थे, तब भीम ने वीच मे टोक कर उनसे कहा—आपका कथन यथार्थ है पर उन अधे के कपूतो को उस समय जरा भी औचित्य का ध्यान नही रहा ! क्या यह विचारणीय वात नही है ? उस घटना के लिए हम लोगो को लज्जित नही होना चाहिए ?

भीम की क्रोध से भरी बात सुनकर श्री कृष्ण उनकी ओर मुडे और कहने लगे—भीम, द्रौपदी की अपेक्षा तुम्हे समझाना कठिन है । तुम्हे अपने वल का अभिमान है और जिसे अभिमान होता है उसे समझाना कठिन होता है । तुम जो कह रहे हो सो अपने स्वभाव के अनुसार कह रहे हो । पर यह तो सोचो कि दुर्योधन ने सब के सामने द्रौपदी को क्यो नग्न करना चाहा था ? इसका कारण यही था कि उसके पापो का घडा भर चुका था और अब उसका भडाफोड होना लाजिमी था । उसका पाप इतना वढ गया था कि वह प्रकट हुए बिना रह ही नही सकता था । उसने पहले जो कुछ किया था वह छिप कर और प्रकट मे हितैषी वनकर किया था । लेकिन इस कृत्य ने उसके पापो को प्रकट कर दिया है । अव सभी जान गये हैं कि दुर्योधन कितना अन्यायी और पापी है । द्रौपदी को नग्न करने की घटना को सुनकर कौरवो के शत्रुओ को तो

नही चाहिए— धैर्यपूर्वक उसे सहन करना चाहिए। इस प्रकार विचार कर जो पुरुष दुख के समय दृढता रखता है और विपाद नही करता उसकी आत्मा का कल्याण होता है।

जव श्रीकृष्ण, द्रौपदी से इस प्रकार कह रहे थे, तब भीम ने वीच मे टोक कर उनसे कहा—आपका कथन यथार्थ है पर उन अधे के कपूतो को उस समय जरा भी औचित्य का ध्यान नही रहा! क्या यह विचारणीय वात नही है? उस घटना के लिए हम लोगो को लज्जित नही होना चाहिए?

भीम की क्रोध से भरी बात सुनकर श्री कृष्ण उनकी ओर मुडे और कहने लगे—भीम, द्रौपदी की अपेक्षा तुम्हे समझाना कठिन है। तुम्हे अपने वल का अभिमान है और जिसे अभिमान होता है उसे समझाना कठिन होता है। तुम जो कह रहे हो सो अपने स्वभाव के अनुसार कह रहे हो। पर यह तो सोचो कि दुर्योधन ने सब के सामने द्रौपदी को क्यो नग्न करना चाहा था? इसका कारण यही था कि उसके पापो का घडा भर चुका था और अब उसका भडाफोड होना लाजिमी था। उसका पाप इतना वढ गया था कि वह प्रकट हुए बिना रह ही नही सकता था। उसने पहले जो कुछ किया था वह छिप कर और प्रकट मे हितैपी वनकर किया था। लेकिन इस कृत्य ने उसके पापो को प्रकट कर दिया है। अब सभी जान गये हैं कि दुर्योधन कितना अन्यायी और पापी है। द्रौपदी को नग्न करने की घटना को सुनकर कौरवो के शत्रुओ को तो

विधान है और किस योजना से उसकी पूर्ति होती है, यह समझना सर्वसाधारण के लिए सरल नही है। इस घटना के रहस्य को मैं जानता हूं या युधिष्ठिर जानते हैं।'

अन्त मे द्रौपदी ने कहा था–कुछ भी हो, यह तो स्पष्ट है कि दुर्योधन महल में मौज करता है और हम लोग यहाँ वन मे कष्ट भोग रहे हैं।

तब श्रीकृष्ण ने उत्तर दिया तुम फिर भूल कर रही हो। दुर्योधन राजमहल की रगड से क्षीण हो रहा है और पाण्डव वन मे विकसित हो रहे है और बलवान् बन रहे हैं। इस बात को तुम क्यो भूल रही हो? यो मैं तुम्हारी सहायता कर सकता हूं। तुम सब को वन मे से द्वारिका ले जा सकता हूं। द्वारिका के राजमहलो मे तुम्हारे योग्य पर्याप्त स्थान है। लेकिन ऐसा करना मैं उचित नही समझता। पाण्डवो के इस वनवास को मैं कष्ट नही समझता वरन् तप समझता हूं। अतएव उचित यही है कि तुम सब वन मे रहकर धैयपूर्वक तप करो। इसका परिणाम निश्चित रूप से अच्छा ही होगा।

कृष्णजी के इस कथन का भाव स्पष्ट है। इस कथानक का विस्तार न करते हुए सिर्फ इतना ही कहना चाहता हू कि जब किसी प्रकार का दुःख या सकट आ पड़े तो उसे शान्तिपूर्वक सहन करना ही योग्य है। ऐसे विकट समय मे आत्मविस्मृत हो जाना उचित नही है। कष्ट जीवन की कसौटी है। माथे पर चढे हुए ऋण का बोझ है। मगर वह बोझ उतर जाने पर आत्मा उसी समय हल्का होता है जब समभाव से, शान्त चित्त से, कष्ट सहन

विधान है और किस योजना से उसकी पूर्ति होती है, यह समझना सर्वसाधारण के लिए सरल नहीं है। इस घटना के रहस्य को मैं जानता हूं या युधिष्ठिर जानते हैं।'

अन्त मे द्रौपदी ने कहा था–कुछ भी हो, यह तो स्पष्ट है कि दुर्योधन महल में मौज करता है और हम लोग यहाँ वन मे कष्ट भोग रहे हैं।

तब श्रीकृष्ण ने उत्तर दिया तुम फिर भूल कर रही हो। दुर्योधन राजमहल की रगड से क्षीण हो रहा है और पाण्डव वन मे विकसित हो रहे है और बलवान् बन रहे हैं। इस बात को तुम क्यो भूल रही हो? यो मैं तुम्हारी सहायता कर सकता हूं। तुम सब को वन मे से द्वारिका ले जा सकता हूं। द्वारिका के राजमहलो मे तुम्हारे योग्य पर्याप्त स्थान है। लेकिन ऐसा करना मैं उचित नही समझता। पाण्डवो के इस वनवास को मैं कष्ट नही समझता वरन् तप समझता हूं। अतएव उचित यही है कि तुम सब वन मे रहकर धैयपूर्वक तप करो। इसका परिणाम निश्चित रूप से अच्छा ही होगा।

कृष्णजी के इस कथन का भाव स्पष्ट है। इस कथानक का विस्तार न करते हुए सिर्फ इतना ही कहना चाहता हू कि जब किसी प्रकार का दुःख या सकट आ पड़े तो उसे शान्तिपूर्वक सहन करना ही योग्य है। ऐसे विकट समय मे आत्मविस्मृत हो जाना उचित नही है। कष्ट जीवन की कसौटी है। माथे पर चढे हुए ऋण का बोझ है। मगर वह बोझ उतर जाने पर आत्मा उसी समय हल्का होता है जब समभाव से, शान्त चित्त से, कष्ट सहन

वस्त्र त्यागने के लिए कहा जाता है, लेकिन आप मे से कितनों ने त्याग किया है ? यह मनोवृत्ति की दुर्वलता ही है।

खादी पहनने में भले ही कष्ट प्रतीत होता हो, मगर ऐसा कष्ट सहना भी एक प्रकार का तप है। इसे समझो और चर्वी के वस्त्र त्यागो सत्य को समझकर भी आंख-मिचौनी करना ठीक नही है। जिसे धर्म प्यारा होगा वह निश्चय करेगा ही कि जिस भोजन और वस्त्र से आत्मा का पतन होता है, वह भोजन और वस्त्र मेरे काम का नही है। इस प्रकार अपनी श्रद्धा को व्यवहार मे लाने वाला ही सच्चा धर्मात्मा कहलाता है। जिसकी धर्ममय श्रद्धा और जिसका आचार एकरूप हो जाता है वह पुरुप भाग्यशाली है। वही परमात्मा का प्यारा है। वही सच्चा भक्त है और उसी की परमात्म—प्रार्थना वास्तविक है। वही पुरुष कल्याण का वरण करता है।

वस्त्र त्यागने के लिए कहा जाता है, लेकिन आप मे से कितनों ने त्याग किया है ? यह मनोवृत्ति की दुर्बलता ही है।

खादी पहनने में भले ही कष्ट प्रतीत होता हो, मगर ऐसा कष्ट सहना भी एक प्रकार का तप है । इसे समझो और चर्बी के वस्त्र त्यागो सत्य को समझकर भी आंख-मिचौनी करना ठीक नही है । जिसे धर्म प्यारा होगा वह निश्चय करेगा ही कि जिस भोजन और वस्त्र से आत्मा का पतन होता है, वह भोजन और वस्त्र मेरे काम का नही है । इस प्रकार अपनी श्रद्धा को व्यवहार मे लाने वाला ही सच्चा धर्मात्मा कहलाता है । जिसकी धर्ममय श्रद्धा और जिसका आचार एकरूप हो जाता है वह पुरुप भाग्यशाली है । वही परमात्मा का प्यारा है । वही सच्चा भक्त है और उसी की परमात्म-प्रार्थना वास्तविक है । वही पुरुष कल्याण का वरण करता है ।

सके। अतएव जिस तरह आँखो की अपूर्णता के कारण सूर्य का आश्रय लिया जाता है, उसी प्रकार आत्मा मे अपूर्णता होने के कारण परमात्मा की सहायता ली जाती है। स्तुतिकार कहते हैं—

सूर्यातिशायि महिमाऽसि मुनीन्द्र ! लोके ।

अर्थात्—हे मुनियो के नाथ ! आपकी महिमा सूर्य से भी बढकर है।

इस प्रकार अनन्त सूर्यों से भी बढकर भगवान पार्श्वनाथ है, उनकी सहायता आत्मा के उत्कर्ष के लिए अपेक्षित है। भगवान् पार्श्वनाथ की शरण मे गये बिना आत्मा का बोध नही हो सकता। जो अपनी इस वास्तविक कमजोरी को जानता होगा और अपनी कमजोरी से डरा होगा, वह पार्श्वनाथ की शरण में गये बिना नही रहेगा।

कोई कह सकता है—जब आत्मा का उत्कर्ष करने के लिए भगवान् पार्श्वनाथ की शरण में जाने की आवश्यकता अनिवार्य है और शरण मे गये बिना काम चल ही नही सकता, तब फिर पार्श्वनाथ की ही शरण मे जाना चाहिए। ऐसी स्थिति मे आत्मा का बोध प्राप्त करने के लिए प्रयत्न करने की क्या आवश्यकता है ?

इस प्रश्न का समाधान यह है कि अन्धे के लिये लाखो सूर्य भी किस काम के ? सूर्य से वही व्यक्ति लाभ उठा सकता है जो स्वय आख वाला है। सूर्य का प्रकाश फैला होने पर भी अगर कोई अपनी आख मूँदे रखता है तो वह सूर्य से कोई लाभ नही उठा सकता। इस प्रकार

सके। अतएव जिस तरह आँखो की अपूर्णता के कारण सूर्य का आश्रय लिया जाता है, उसी प्रकार आत्मा मे अपूर्णता होने के कारण परमात्मा की सहायता ली जाती है। स्तुतिकार कहते हैं—

सूर्यातिशायि महिमाऽसि मुनीन्द्र! लोके।

अर्थात्—हे मुनियो के नाथ! आपकी महिमा सूर्य से भी बढकर है।

इस प्रकार अनन्त सूर्यों से भी बढकर भगवान पार्श्वनाथ है, उनकी सहायता आत्मा के उत्कर्ष के लिए अपेक्षित है। भगवान् पार्श्वनाथ की शरण मे गये बिना आत्मा का बोध नही हो सकता। जो अपनी इस वास्तविक कमजोरी को जानता होगा और अपनी कमजोरी से डरा होगा, वह पार्श्वनाथ की शरण में गये बिना नही रहेगा।

कोई कह सकता है—जब आत्मा का उत्कर्ष करने के लिए भगवान् पार्श्वनाथ की शरण में जाने की आवश्यकता अनिवार्य है और शरण मे गये बिना काम चल ही नही सकता, तब फिर पार्श्वनाथ की ही शरण मे जाना चाहिए। ऐसी स्थिति मे आत्मा का बोध प्राप्त करने के लिए प्रयत्न करने की क्या आवश्यकता है?

इस प्रश्न का समाधान यह है कि अन्धे के लिये लाखो सूर्य भी किस काम के? सूर्य से वही व्यक्ति लाभ उठा सकता है जो स्वय आख वाला है। सूर्य का प्रकाश फैला होने पर भी अगर कोई अपनी आख मूंदे रखता है तो वह सूर्य से कोई लाभ नही उठा सकता। इस प्रकार

जाता है। इसके अतिरिक्त मनुष्य की अच्छाई का असर भी दूसरो पर पडता है। अच्छे रत्न का प्रभाव सारे जगत पर पडे विना नही रहता। भगवान् पार्श्वनाथ नें जगत को वही मूल्यवान् वस्तु का उपहार प्रदान किया था, जिसकी उसे अत्यन्त आवश्यकता थी और जिसके अभाव में जगत व्याकुल, दु खपूर्ण और अशान्त था। भगवान् पार्श्वनाथ ने जगत को वे गुण वतलाये जिनसे जगत का कल्याण होता है। भगवान् ने जिन गुणो से विश्व का कल्याण होते देखा, उन्ही गुणों को अपनाने के लिए जोर दिया और उनके भक्तो ने वे गुग अपनाए। भक्तो के इस कार्य से भगवान् पार्श्वनाथ अधिक प्रसिद्ध हुए। भगवान् को वस्तुत भक्त ही प्रसिद्ध करते हैं और भक्त ही बदनाम भी करते है। इस तथ्य को समझ लेने के पश्चात् हम सवको अपना कर्त्तव्य स्थिर करना चाहिए।

भगवान् पार्श्वनाथ के चरित्र में एक वड़ी वात देखी जाती है। मैंने अनेक महापुरुषो के जीवनचरित देखे हैं और उनमें भी वह बात पाई जाती हैं। जिन्हे लोग महापुरुप मानते हैं उनकी जीवनी में यह वात प्राय. देखी जाती है। साधारण लोग साप को जहरीला कहकर उसके प्रति क्रूरतापूर्ण व्यवहार करते हैं लेकिन महापुरुष सा। पर भी अपना प्रभाव डालते हैं। भगवान् महावीर ने चडकौशिक साप का उद्धार किया था, यह बात तो प्रसिद्ध ही है। कृष्ण के जीवन चरित्र मे भी सांप का सवध पाया जाता है। मुहम्मद साहव के चरित्र मे भी साप का वर्णन आया है। इसी प्रकार ईसा के चरित्र में भी सांप का उल्लेख आता है। भगवान् पार्श्वनाथ के जीवनचरित्र में भी साप का सवध पाया जाता है। इससे

जाता है। इसके अतिरिक्त मनुष्य की अच्छाई का असर भी दूसरो पर पडता है। अच्छे रत्न का प्रभाव सारे जगत पर पडे विना नही रहता। भगवान् पार्श्वनाथ ने जगत को वही मूल्यवान् वस्तु का उपहार प्रदान किया था, जिसकी उसे अत्यन्त आवश्यकता थी और जिसके अभाव में जगत व्याकुल, दु खपूर्ण और अशान्त था। भगवान् पार्श्वनाथ ने जगत को वे गुण वतलाये जिनसे जगत का कल्याण होता है। भगवान् ने जिन गुणो से विश्व का कल्याण होते देखा, उन्ही गुणों को अपनाने के लिए जोर दिया और उनके भक्तो ने वे गुग अपनाए। भक्तो के इस कार्य से भगवान् पार्श्वनाथ अधिक प्रसिद्ध हुए। भगवान् को वस्तुत भक्त ही प्रसिद्ध करते हैं और भक्त ही वदनाम भी करते है। इस तथ्य को समझ लेने के पश्चात् हम सवको अपना कर्त्तव्य स्थिर करना चाहिए।

भगवान् पार्श्वनाथ के चरित्र में एक वड़ी वात देखी जाती है। मैंने अनेक महापुरुषो के जीवनचरित देखे हैं और उनमें भी वह बात पाई जाती हैं। जिन्हे लोग महापुरुष मानते हैं उनकी जीवनी में यह वात प्राय. देखी जाती है। साधारण लोग साप को जहरीला कहकर उसके प्रति क्रूरतापूर्ण व्यवहार करते हैं लेकिन महापुरुष सा। पर भी अपना प्रभाव डालते हैं। भगवान् महावीर ने चडकौशिक साप का उद्धार किया था, यह बात तो प्रसिद्ध ही है। कृष्ण के जीवन चरित्र मे भी सांप का सवध पाया जाता है। मुहम्मद साहव के चरित्र मे भी साप का वर्णन आया है। इसी प्रकार ईसा के चरित्र में भी सांप का उल्लेख आता है। भगवान् पार्श्वनाथ के जीवनचरित्र में भी साप का सवध पाया जाता है। इससे

नाथ के चरित्र से समझी जा सकती है।

भगवान् पार्श्वनाथ जब बालक थे, उस समय उनके पूर्ववर्ती दसवे भव का भाई तापस बनकर आया। उसने घूनियां जगाईं और इससे लोग बहुत प्रभावित हुए। झुण्ड के झुण्ड लोग उस तापस के पास जाने लगे और अपनी श्रद्धा-भक्ति प्रकट करने लगे। भगवान् पार्श्वनाथ की माता ने उनसे कहा—नगर के बाहर एक बडा भारी तपस्वी आया है। वह उग्र तपस्या कर रहा है। सब लोग उसे देखने के लिए जाते हैं। मेरे साथ तुम भी चलो तो हम सब भी देख आयें।

महापुरुष सादे बनकर प्रत्येक काम करते हैं। अतएव माता के कहने पर भगवान् पार्श्वनाथ ने तपस्वी के पास जाना स्वीकार कर लिया। माता के साथ वे तापस के स्थान पर गये। भगवान् राजकुमार थे और उनकी माता महारानी थी। दोनो को देखकर तापस बहुत प्रसन्न हुआ। वह सोचने लगा— जब महारानी और राजकुमार भी मेरी तपस्या से प्रभावित हो गये हैं तो मुझे और क्या चाहिए ?

भगवान् पार्श्वनाथ ने हाथी पर बैठे हुए ही—उतरने से पहले ही—जान लिया था कि यह तापस मेरे दस भव पहले का भाई है। मेरा यह भाई आज जिस स्थिति मे है, अगर उसी स्थिति मे रहा तो अपना परलोक बिगाड़ लेगा। जैसे भी सभव हो, इसका उद्धार करना चाहिए। यह तो निश्चित है कि मैं इसका उद्धार करने चलूंगा तो इसके रोष और द्वेष का मुझे भाजन बनना पड़ेगा। इसे सहन करके भी उद्धार करना चाहिए। यह मेरा कर्त्तव्य है।

नाथ के चरित्र से समझी जा सकती है।

भगवान् पार्श्वनाथ जब बालक थे, उस समय उनके पूर्ववर्ती दसवे भव का भाई तापस बनकर आया। उसने धूनियां जगाई और इससे लोग बहुत प्रभावित हुए। झुण्ड के झुण्ड लोग उस तापस के पास जाने लगे और अपनी श्रद्धा-भक्ति प्रकट करने लगे। भगवान् पार्श्वनाथ की माता ने उनसे कहा—नगर के बाहर एक बडा भारी तपस्वी आया है। वह उग्र तपस्या कर रहा है। सब लोग उसे देखने के लिए जाते हैं। मेरे साथ तुम भी चलो तो हम सब भी देख आयें।

महापुरुष सादे बनकर प्रत्येक काम करते हैं। अतएव माता के कहने पर भगवान् पार्श्वनाथ ने तपस्वी के पास जाना स्वीकार कर लिया। माता के साथ वे तापस के स्थान पर गये। भगवान् राजकुमार थे और उनकी माता महा-रानी थी। दोनो को देखकर तापस बहुत प्रसन्न हुआ। वह सोचने लगा— जब महारानी और राजकुमार भी मेरी तपस्या से प्रभावित हो गये हैं तो मुझे और क्या चाहिए ?

भगवान् पार्श्वनाथ ने हाथी पर बैठे हुए ही—उतरने से पहले ही—जान लिया था कि यह तापस मेरे दस भव पहले का भाई है। मेरा यह भाई आज जिस स्थिति मे है, अगर उसी स्थिति मे रहा तो अपना परलोक बिगाड़ लेगा। जैसे भी सभव हो, इसका उद्धार करना चाहिए। यह तो निश्चित है कि मैं इसका उद्धार करने चलूंगा तो इसके रोष और द्वेष का मुझे भाजन बनना पड़ेगा। इसे सहन करके भी उद्धार करना चाहिए। यह मेरा कर्त्तव्य है।

सच्चा मार्ग नही जान पाया है। अगर मैं कुछ नही जानता और आप सब कुछ जानते है तो बतलाइये कि आपकी धूनी मे जलनेवाली लकड़ी मे क्या है ?

तापस—इसमे क्या है अग्निदेव के सिवाय और क्या हो सकता है ! सूर्य, इन्द्र और अग्नि–यह तीनो देव हैं। धूनी की लकडी में अग्नि देव है।

भगवान् ने शान्त स्वर में कहा—धूनी में जलने वाली इस लकडी मे अग्निदेव के सिवाय और कुछ नही है, यही आपका उत्तर है न ?

तापस—हाँ, हाँ, यही मेरा उत्तर है। उसमें और क्या रक्खा है ?

भगवान् बोले—इसी से कहता हूं कि अभी तक आप कुछ भी नही जानते। आप जिस लकडी को धूनी में जला रहे हैं, उस लकडी के भीतर हमारे आपके समान ही एक प्राणी जल रहा है।

तापस की आखें लाल हो गई। वह तिलमिला कर बोला झूठ ! एकदम झूठ ! तपस्वी पर ऐसा आरोप लगाना घोर पाप है।

भगवान् हाथ कगन को आरसी क्या ! आप झूठे हैं या मैं झूठा हूं, इसका निर्णय तो अभी हुआ जाता है। लकड़ी चिरवा कर देखलो तो असलियत का पता लग जायेगा।

तापस–ठीक है मुझे यह स्वीकार है।

लकडी चीरी गई तो उसमें से एक सांप निकला।

सच्चा मार्ग नही जान पाया है। अगर मैं कुछ नही जानता और आप सब कुछ जानते है तो वतलाइये कि आपकी धूनी मे जलनेवाली लकड़ी मे क्या है ?

तापस—इसमे क्या है अग्निदेव के सिवाय और क्या हो सकता है ! सूर्य, इन्द्र और अग्नि–यह तीनो देव हैं। धूनी की लकडी में अग्नि देव है।

भगवान् ने शान्त स्वर में कहा—धूनी में जलने वाली इस लकडी मे अग्निदेव के सिवाय और कुछ नही है, यही आपका उत्तर है न ?

तापस—हाँ, हाँ, यही मेरा उत्तर है। उसमें और क्या रक्खा है ?

भगवान् वोले—इसी से कहता हूं कि अभी तक आप कुछ भी नही जानते। आप जिस लकडी को धूनी में जला रहे हैं, उस लकडी के भीतर हमारे आपके समान ही एक प्राणी जल रहा है।

तापस की आखें लाल हो गई। वह तिलमिला कर वोला झूठ ! एकदम झूठ ! तपस्वी पर ऐसा आरोप लगाना घोर पाप है।

भगवान् हाथ कगन को आरसी क्या ! आप झूठे हैं या मैं झूठा हूं, इसका निर्णय तो अभी हुआ जाता है। लकड़ी चिरवा कर देखलो तो असलियत का पता लग जायेगा।

तापस—ठीक है मुझे यह स्वीकार है।

लकडी चीरी गई तो उसमें से एक सांप निकला।

होगा, यह निश्चित रूप से नही कहा जा सकता और भगवान् की महिमा भी नही कही जा सकती। फिर भी अनुमान के आधार पर कहा जा सकता है कि उनका उपदेश इसी आशय का रहा होगा। प्रथम तो स्वय भगवान् उपदेशक थे, दूसरे पच नमस्कार मत्र का उपदेश था। अतएव मरणासन्न साप अग्नि का सताप भूल गया। उसकी परिणति चन्दन के समान शीतल हो गई। वह अत्यन्त प्रसन्न हुआ और बारम्बार भगवान् की ओर देखने लगा।

साप की जो कथा आप सुन रहे हैं वह मनोरजन के लिए नही है। उससे बहुत कुछ शिक्षा ली जा सकती है और शिक्षा लेने के लिए ही वह सुनाई गई है। क्या आप भगवान् पार्श्वनाथ को भजते हैं ? अगर आप भगवान् को भजते हैं तो आपकी मनोवृत्ति ऐसी हो जानी चाहिए कि कोई कैसी ही आग में क्यो न जलावे, आप शीतल ही बने रहे। वास्तव मे आग की ज्वाला मे संताप नही है सताप है क्रोध मे। अगर आप अपनी वृत्ति मे से क्रोध को नष्ट कर दे तो आपको किसी भी प्रकार की आग नही जला सकती। लेकिन होता यह है कि लोग भगवान् पार्श्वनाथ का नाम जीभ से बोलकर आग को हाथ लगाते हैं और कहते है कि आग शीतल क्यो नही हुई ? वे यह नहीं देखते कि हम बाहर की आग को शान्त तो करना चाहते हैं मगर हृदय की आग–क्रोध की शान्ति हुई है या नही ? अगर हृदय की आग शान्त नही हुई है तो बाहरी आग कैसे शीतल हो सकती है ? हृदय की आग को शान्त करके देखो तो सारा जगत शीतल दिखाई देगा।

ग्रन्थो मे कहा है कि भगवान् के उपदेश के कारण

होगा, यह निश्चित रूप से नही कहा जा सकता और भगवान् की महिमा भी नही कही जा सकती। फिर भी अनुमान के आधार पर कहा जा सकता है कि उनका उपदेश इसी आशय का रहा होगा। प्रथम तो स्वय भगवान् उपदेशक थे, दूसरे पच नमस्कार मत्र का उपदेश था। अतएव मरणासन्न साप अग्नि का सताप भूल गया। उसकी परिणति चन्दन के समान शीतल हो गई। वह अत्यन्त प्रसन्न हुआ और बारम्बार भगवान् की ओर देखने लगा।

साप की जो कथा आप सुन रहे हैं वह मनोरजन के लिए नही है। उससे बहुत कुछ शिक्षा ली जा सकती है और शिक्षा लेने के लिए ही वह सुनाई गई है। क्या आप भगवान् पार्श्वनाथ को भजते हैं ? अगर आप भगवान् को भजते हैं तो आपकी मनोवृत्ति ऐसी हो जानी चाहिए कि कोई कैसी ही आग में क्यो न जलावे, आप शीतल ही बने रहे। वास्तव मे आग की ज्वाला मे संताप नही है सताप है क्रोध मे। अगर आप अपनी वृत्ति मे से क्रोध को नष्ट कर दे तो आपको किसी भी प्रकार की आग नही जला सकती। लेकिन होता यह है कि लोग भगवान् पार्श्वनाथ का नाम जीभ से बोलकर आग को हाथ लगाते हैं और कहते हैं कि आग शीतल क्यो नही हुई ? वे यह नही देखते कि हम बाहर की आग को शान्त तो करना चाहते हैं मगर हृदय की आग-क्रोध की शान्ति हुई है या नही ? अगर हृदय की आग शान्त नही हुई है तो बाहरी आग कैसे शीतल हो सकती है ? हृदय की आग को शान्त करके देखो तो सारा जगत शीतल दिखाई देगा।

ग्रन्थो मे कहा है कि भगवान् के उपदेश के कारण

हिसाव समझाने के लिए ही बतलाये गये हैं। अतएव देखना चाहिए कि किस प्रकार हमने अपने हृदय के द्वार भगवान् पार्श्वनाथ के आने के लिए बद कर रखे हैं और उसका परिणाम क्या हो रहा है? दूसरो के दुर्गुण देखने मे मत लगे रहो, अपने ही दुर्गुण देखो। दूसरो के दुर्गुण देखते रहने से अपने दुर्गुण दिखाई नही देते। अतएव अपने अवगुणों को देखो और सोचो कि हृदय मे परमात्मा को बसाने में कहा चूक हो रही है? वास्तव मे मनुष्य कहां चूकता है यह बताने के लिए टालस्टाय द्वारा लिखित और गाधीजी द्वारा अनुवादित 'सच्चा श्रमजीवी' नामक पुस्तक मे से कुछ अश आपको सुनाता हू, उस पर से आप समझ सकेंगे कि हमारी आत्मा कहा–क्या भूल कर रही है।

'सच्चा श्रमजीवी' पुस्तक की जिस वात को मैं कह रहा हूं, वह वहा किन्ही दूसरे शव्दो मे लिखी होगी। लेकिन उसका भाव यह है:—

एक आदमी के तीन लड़के थे और एक लड़की थी। उसके एक लड़के का नाम मूर्खराज था। वह शारीरिक श्रम करने वाला था।

दुनिया मे दो प्रकार के मनुष्य हैं। एक वह जो शारीरिक श्रम करते हैं और दूसरे वे हैं जो केवल वुद्धि की खटपट से ही सव चीजे प्राप्त करके मौज उड़ाते हैं। मूर्खराज श्रमजीवी था।

आप लोग जो कपडे पहनते हैं, उन्हे आपने वुद्धि द्वारा प्राप्त किया है या श्रम द्वारा? आपने श्रम द्वारा उन्हे प्राप्त नही किया है, वुद्धि के द्वारा प्राप्त किया है।

हिसाब समझाने के लिए ही बतलाये गये हैं। अतएव देखना चाहिए कि किस प्रकार हमने अपने हृदय के द्वार भगवान् पार्श्वनाथ के आने के लिए बद कर रखे हैं और उसका परिणाम क्या हो रहा है ? दूसरो के दुर्गुण देखने मे मत लगे रहो, अपने ही दुर्गुण देखो। दूसरो के दुर्गुण देखते रहने से अपने दुर्गुण दिखाई नही देते। अतएव अपने अवगुणों को देखो और सोचो कि हृदय मे परमात्मा को बसाने में कहा चूक हो रही है? वास्तव मे मनुष्य कहां चूकता है यह बताने के लिए टालस्टाय द्वारा लिखित और गाधीजी द्वारा अनुवादित 'सच्चा श्रमजीवी' नामक पुस्तक मे से कुछ अश आपको सुनाता हू, उस पर से आप समझ सकेंगे कि हमारी आत्मा कहा—क्या भूल कर रही है।

'सच्चा श्रमजीवी' पुस्तक की जिस बात को मैं कह रहा हूं, वह वहा किन्ही दूसरे शब्दो मे लिखी होगी। लेकिन उसका भाव यह है:—

एक आदमी के तीन लड़के थे और एक लड़की थी। उसके एक लड़के का नाम मूर्खराज था। वह शारीरिक श्रम करने वाला था।

दुनिया मे दो प्रकार के मनुष्य हैं। एक वह जो शारीरिक श्रम करते हैं और दूसरे वे हैं जो केवल बुद्धि की खटपट से ही सब चीजे प्राप्त करके मौज उड़ाते हैं। मूर्खराज श्रमजीवी था।

आप लोग जो कपडे पहनते हैं, उन्हे आपने बुद्धि द्वारा प्राप्त किया है या श्रम द्वारा ? आपने श्रम द्वारा उन्हे प्राप्त नही किया है, बुद्धि के द्वारा प्राप्त किया है।

को क्या दर्द है ? उसने सोचा—संभव है, कुत्ता भूखा हो और भूख का मारा ही तडफ रहा हो। वह घर मे से रोटी लाया। कुत्ते के सामने रख दी। मगर कुत्ते ने रोटी नही खाई। तब मूर्खराज ने विचार किया—इसे कोई दर्द मालूम होता है। मेरे पास जो बूटी है वह फिर क्या काम आएगी ? एक बूटी से मेरा दर्द गया है और दूसरी से इसका दर्द मिटा देना चाहिए।

क्या बुद्धिवादी लोग ऐसा करने को तैयार होंगे ? क्या कुत्ते के प्राणों की उनके आगे इतनी कीमत है कि ऐसी अनमोल बूटी देकर उसके प्राणो की रक्षा की जाये ? बुद्धिवादी ऐसा करना बूटी का अपव्यय समझेगा। मगर वह तो मूर्खराज जो ठहरा ? उसने एक बूटी रोटी मे मिलाकर किसी तरह कुत्ते को खिला दी। थोडी देर मे कुत्ता ठीक हो गया और पूंछ हिलाकर प्रसन्नता प्रकट करने लगा।

जो मनुष्य कुत्ते को एक भी टुकडा डाल देता है, उसे कुत्ता भोकता नही है। लेकिन मनुष्य क्या करता है ? लड्डू खिलाने वाले पर भी मनुष्य भौंकने से कब चूकता है ? लोग लड्डू खिलाने वाले के लड्डू भी खा जाते हैं और उस पर भौंकने भी लगते हैं। फिर भी मनुष्य के सामने कुत्ते के प्राणो की कोई कीमत ही नही है !

जब घर वालो ने देखा कि मूर्खराज ने कुत्ते को सहज ही ठीक कर दिया है तो वे कहने लगे—हम इसे मूर्ख समझते थे, मगर यह तो होशियार जान पडता है। इसने देखते-देखते कुत्ते को ठीक कर दिया। एक ने उससे

को क्या दर्द है ? उसने सोचा—संभव है, कुत्ता भूखा हो और भूख का मारा ही तडफ रहा हो। वह घर मे से रोटी लाया। कुत्ते के सामने रख दी। मगर कुत्ते ने रोटी नही खाई। तब मूर्खराज ने विचार किया—इसे कोई दर्द मालूम होता है। मेरे पास जो बूटी है वह फिर क्या काम आएगी ? एक बूटी से मेरा दर्द गया है और दूसरी से इसका दर्द मिटा देना चाहिए।

क्या बुद्धिवादी लोग ऐसा करने को तैयार होगे ? क्या कुत्ते के प्राणों की उनके आगे इतनी कीमत है कि ऐसी अनमोल बूटी देकर उसके प्राणो की रक्षा की जाये ? बुद्धिवादी ऐसा करना बूटी का अपव्यय समझेगा। मगर वह तो मूर्खराज जो ठहरा ? उसने एक बूटी रोटी मे मिलाकर किसी तरह कुत्ते को खिला दी। थोडी देर मे कुत्ता ठीक हो गया और पूंछ हिलाकर प्रसन्नता प्रकट करने लगा।

जो मनुष्य कुत्ते को एक भी टुकडा डाल देता है, उसे कुत्ता भोंकता नही है। लेकिन मनुष्य क्या करता है ? लड्डू खिलाने वाले पर भी मनुष्य भौंकने से कब चूकता है ? लोग लड्डू खिलाने वाले के लड्डू भी खा जाते हैं और उस पर भौंकने भी लगते हैं। फिर भी मनुष्य के सामने कुत्ते के प्राणो की कोई कीमत ही नही है !

जब घर वालो ने देखा कि मूर्खराज ने कुत्ते को सहज ही ठीक कर दिया है तो वे कहने लगे—हम इसे मूर्ख समझते थे, मगर यह तो होशियार जान पडता है। इसनें देखते-देखते कुत्ते को ठीक कर दिया। एक ने उससे

करने लगे और कुत्तों को बूटी खिला देने के लिए उपालभ देने लगे तो उसने उत्तर दिया—आप लोगों के लिए वह कुत्ता है और मेरे लिए मेरे ही समान प्राणी है। अतएव उसके लिए मैं अपने प्राण भी दे सकता हूं।

घर वाले खिन्न चित्त होकर कहने लगे—चलो, जो कुछ हुआ सो हुआ। अब एक बूटी बची है, वह किसी को मत देना।

मूर्खराज ने कहा— ठीक है, मैं इसे व्यर्थ नष्ट नहीं करूँगा।

सयोगवश उस शहर के बादशाह की लड़की बीमार हो गई। लड़की बादशाह और उसकी पत्नी को अत्यन्त प्रिय थी। इसलिए बादशाह ने ढिंढोरा पिटवाया कि मेरी लडकी को जो अच्छा कर देगा उसे मैं मुँहमागा इनाम दूँगा। बादशाह द्वारा पिटवाये गये ढिंढोरे को मूर्खराज के घर वालो ने भी सुना। उन्होने मूर्खराज से कहा—बूटी की बदौलत अब तेरा भाग्य खुल जायेगा। तेरे पास जो बूटी है, उसे बादशाह की लड़की को खिला दे। लडकी अच्छी हो जायेगी तो उसके साथ तेरा विवाह हो जायेगा। तू सुखी हो जायेगा और तेरे साथ हम लोग भी सुखी हो जाएँगे।

मूर्खराज ने माता-पिता आदि की बात स्वीकार करते हुए कहा—ठीक है, मैं जाऊँगा।

माता-पिता आदि ने मूर्खराज को स्नान करवाया। अच्छे कपड़े पहनने को दिये और बादशाह के पास जाने को रवाना किया। मूर्खराज बूटी अपने साथ लेकर बादशाह

करने लगे और कुत्तों को बूटी खिला देने के लिए उपालभ देने लगे तो उसने उत्तर दिया—आप लोगों के लिए वह कुत्ता है और मेरे लिए मेरे ही समान प्राणी है। अतएव उसके लिए मैं अपने प्राण भी दे सकता हूं।

घर वाले खिन्न चित्त होकर कहने लगे—चलो, जो कुछ हुआ सो हुआ। अब एक बूटी बची है, वह किसी को मत देना।

मूर्खराज ने कहा—ठीक है, मैं इसे व्यर्थ नष्ट नहीं करूँगा।

सयोगवश उस शहर के बादशाह की लड़की बीमार हो गई। लड़की बादशाह और उसकी पत्नी को अत्यन्त प्रिय थी। इसलिए बादशाह ने ढिढोरा पिटवाया कि मेरी लडकी को जो अच्छा कर देगा उसे मैं मुँहमागा इनाम दूँगा। बादशाह द्वारा पिटवाये गये ढिढोरे को मूर्खराज के घर वालो ने भी सुना। उन्होने मूर्खराज से कहा—बूटी की बदौलत अब तेरा भाग्य खुल जायेगा। तेरे पास जो बूटी है, उसे बादशाह की लड़की को खिला दे। लडकी अच्छी हो जायेगी तो उसके साथ तेरा विवाह हो जायेगा। तू सुखी हो जायेगा और तेरे साथ हम लोग भी सुखी हो जाएँगे।

मूर्खराज ने माता-पिता आदि की बात स्वीकार करते हुए कहा—ठीक है, मैं जाऊँगा।

माता-पिता आदि ने मूर्खराज को स्नान करवाया। अच्छे कपड़े पहनने को दिये और बादशाह के पास जाने को रवाना किया। मूर्खराज बूटी अपने साथ लेकर बादशाह

उसे आया देख घर वाले पूछने लगे—क्यों, बादशाह के पास नहीं गया ? लौट क्यो आया ?

मूर्खराज—मार्ग मे मुझसे एक अच्छा काम हो गया, इसलिए लौट आया हू । घर वालो को बड़ी चिन्ता हुई । उन्होने पूछा—क्या हुआ, कुछ बता भी सही ।

मूर्खराज ने बुढिया का वृत्तान्त कह सुनाया । घर वालों ने यह सुना तो क्रोध के मारे पागल हो उठे । कहने लगे—मूर्खराज कही के ! तू ने हमारे सारे मसूवे मिट्टी मे मिला दिये !

भगवान् पार्श्वनाथ को तो आप भी पुकारते हैं, मगर किसलिए पुकारते हैं ? आप उनके शिष्य कहलाते हैं, मगर क्या करने के लिए ? पार्श्वनाथ के शिष्य कहला कर भी क्या आप मे मूर्खराज सरीखी दया है ? मूर्खराज की निस्पृह दया कितनी सराहनीय है ? क्या आपका अन्त:-करण इस प्रकार की दया से जीवन में एक बार भी कभी द्रवित हुआ है ? स्वयं मे ऐसी दया होना तो दूर रहा, आपके घर का कोई आदमी इस मूर्खराज के समान कार्य करे तो आप उसे शायद घर से निकाल देने के लिए तैयार हो जाएँ ! ऐसी स्थिति मे आप भगवान् पार्श्वनाथ द्वारा की गई दया का असली महत्त्व समझ सकते है ? अगर आप सचमुच ही दया का महत्त्व समझते हैं तो अछूतों को व्याख्यान सुनने देने से क्यो वचित रखते हैं ? मैं आपके मकान मे ठहरा हू । अतएव आपकी इच्छा के विरुद्ध कुछ नही कर सकता । किसी को आने या न आने देने का मुझे अधिकार नही है । लेकिन इस विषय मे आप क्या

उसे आया देख घर वाले पूछने लगे—क्यों, बादशाह के पास नहीं गया ? लौट क्यो आया ?

मूर्खराज—मार्ग मे मुझसे एक अच्छा काम हो गया, इसलिए लौट आया हू । घर वालो को बड़ी चिन्ता हुई । उन्होने पूछा—क्या हुआ, कुछ बता भी सही ।

मूर्खराज ने बुढिया का वृत्तान्त कह सुनाया । घर वालों ने यह सुना तो क्रोध के मारे पागल हो उठे । कहने लगे—मूर्खराज कही के ! तू ने हमारे सारे मसूबे मिट्टी मे मिला दिये !

भगवान् पार्श्वनाथ को तो आप भी पुकारते हैं, मगर किसलिए पुकारते हैं ? आप उनके शिष्य कहलाते हैं, मगर क्या करने के लिए ? पार्श्वनाथ के शिष्य कहला कर भी क्या आप मे मूर्खराज सरीखी दया है ? मूर्खराज की निस्पृह दया कितनी सराहनीय है ? क्या आपका अन्त.-करण इस प्रकार की दया से जीवन में एक बार भी कभी द्रवित हुआ है ? स्वयं मे ऐसी दया होना तो दूर रहा, आपके घर का कोई आदमी इस मूर्खराज के समान कार्य करे तो आप उसे शायद घर से निकाल देने के लिए तैयार हो जाएँ ! ऐसी स्थिति मे आप भगवान् पार्श्वनाथ द्वारा की गई दया का असली महत्त्व समझ सकते हे ? अगर आप सचमुच ही दया का महत्त्व समझते हैं तो अछूतों को व्याख्यान सुनने देने से क्यो वचित रखते हैं ? मैं आपके मकान मे ठहरा हू । अतएव आपकी इच्छा के विरुद्ध कुछ नही कर सकता । किसी को आने या न आने देने का मुझे अधिकार नही है । लेकिन इस विषय मे आप क्या

ही ऐसी बनी है। मैं क्या करूँ ?

मूर्खराज की सरल सीधी बात सुनकर संतान प्रेम के कारण माता-पिता आगे कुछ न कह सके। वे चुप हो रहे। सोचने लगे— इसका क्या दोष ? दोष अगर है तो हमारी तकदीर का ही।

मूर्खराज के हृदय मे यह था कि जो भी दुखी सामने आवे, उसका दुःख दूर करने के लिए, अपने पास जो भी कुछ हो, दे देना चाहिए। मगर आपके हृदय में क्या है ? जरा अपने हृदय को टटोलो। आप भगवान् पार्श्वनाथ के शिष्य हैं। आपके अन्तःकरण में दया का कैसा शीतल झरना बहना चाहिए ? भगवान् साप सरीखे जहरीले प्राणी के लिए भी हाथी से नीचे उतरे। उन्होने पास जाकर उसे उपदेश का अमृत पिलाया। मगर आप दया-दया का पुकार करते हुए भी मान के हाथी पर ही सवार बने रहते हैं। ऐसी दशा मे कैसे कहा जा सकता है कि आपने दया को पहचाना है ? दया करने के लिए मूर्खराज के समान बनना पड़ता है। मूर्खराज को जैसी बूटी मिली थी, आपको वैसी मिल जाये तो आप उसे लेने को फौरन तैयार हो जाएँगे और कदाचित् मूर्खराज मिल जाये तो कहने लगेंगे 'यह तो मूर्खराज है हम इसे लेकर क्या करेंगे ? आप मूर्खराज का अस्थिपंजर लो, यह मैं नहीं कहता। मैं कहता हूं कि मूर्खराज के गुणो को ग्रहण करो। जिस प्रकार मूर्खराज निःस्वार्थ और निष्पक्ष होकर दया करता था, उसी प्रकार आप भी दया करो।

खरगोश हाथी का क्या लगता था ? हाथी को उसकी

ही ऐसी बनी है। मैं क्या करूँ ?

मूर्खराज की सरल सीधी बात सुनकर संतान प्रेम के कारण माता-पिता आगे कुछ न कह सके। वे चुप हो रहे। सोचने लगे— इसका क्या दोष ? दोष अगर है तो हमारी तकदीर का ही।

मूर्खराज के हृदय मे यह था कि जो भी दुखी सामने आवे, उसका दुख दूर करने के लिए, अपने पास जो भी कुछ हो, दे देना चाहिए। मगर आपके हृदय में क्या है ? जरा अपने हृदय को टटोलो। आप भगवान् पार्श्वनाथ के शिष्य हैं। आपके अन्तःकरण में दया का कैसा शीतल झरना बहना चाहिए ? भगवान् साप सरीखे जहरीले प्राणी के लिए भी हाथी से नीचे उतरे। उन्होने पास जाकर उसे उपदेश का अमृत पिलाया। मगर आप दया-दया का पुकार करते हुए भी मान के हाथी पर ही सवार बने रहते हैं। ऐसी दशा मे कैसे कहा जा सकता है कि आपने दया को पहचाना है ? दया करने के लिए मूर्खराज के समान बनना पड़ता है। मूर्खराज को जैसी बूटी मिली थी, आपको वैसी मिल जाये तो आप उसे लेने को फौरन तैयार हो जाएंगे और कदाचित् मूर्खराज मिल जाये तो कहने लगेंगे 'यह तो मूर्खराज है हम इसे लेकर क्या करेंगे ? आप मूर्खराज का अस्थिपजर लो, यह मैं नही कहता। मैं कहता हूं कि मूर्खराज के गुणो को ग्रहण करो। जिस प्रकार मूर्खराज निःस्वार्थ और निष्पक्ष होकर दया करता था, उसी प्रकार आप भी दया करो।

खरगोश हाथी का क्या लगता था ? हाथी को उसकी

है। मगर बुद्धि की खटपट त्याग कर मूर्खराज के समान बनने पर ही ऐसी दया की जा सकती है।

ग्रन्थकारों ने हमारे सामने सच्चे दयालुओं के चरित्र इसी उद्देश्य से रखे हैं कि हम उन्हे सुन-समझ कर यह जान सके कि सच्ची दया किस प्रकार हो सकती है। सभव है आप किसी दयालु के चरित्र को पूरी तरह न अपना सकें, तथापि अगर और किसी रूप से अपनाएंगे तो भी आपका कल्याण होगा। आत्मा मे जो कर्म-रोग घुसे हैं, वे धन की अथवा राज्य की शक्ति से नष्ट नही किये जा सकते। उनका विनाश करने के लिये दया ही दवा है। अतएव अपने हृदय मे दया को प्रकट करो। ऐसा करने से आपका कल्याण होगा और साथ ही ससार का भी।

है । मगर बुद्धि की खटपट त्याग कर मूर्खराज के समान बनने पर ही ऐसी दया की जा सकती है ।

ग्रन्थकारों ने हमारे सामने सच्चे दयालुओं के चरित्र इसी उद्देश्य से रखे हैं कि हम उन्हे सुन-समझ कर यह जान सके कि सच्ची दया किस प्रकार हो सकती है । सभव है आप किसी दयालु के चरित्र को पूरी तरह न अपना सकें, तथापि अगर और किसी रूप से अपनाएंगे तो भी आपका कल्याण होगा । आत्मा मे जो कर्म-रोग घुसे हैं, वे धन की अथवा राज्य की शक्ति से नष्ट नही किये जा सकते । उनका विनाश करने के लिये दया ही दवा है । अतएव अपने हृदय मे दया को प्रकट करो । ऐसा करने से आपका कल्याण होगा और साथ ही ससार का भी ।

वचन और मन की विरूपता का त्याग करके—हृदय मे विरोधी भाव न रखकर परमात्मा के साथ एकनिष्ठा प्रीति धारण करें। इस प्रकार का हार्दिक ध्येय होने पर ही आत्मा का कल्याण हो सकता है।

ससार में सब की मति एक सी नही होती। कहावत है— 'मुण्डे मुण्डे मतिर्भिन्ना।' अर्थात् सब की मति न्यारी-न्यारी होती है। लेकिन इस भिन्नता मे भी कही न कही एकता भी मिलती है। सूर्य ससार को प्रकाश दे रहा है इस कथन मे किसी का मतभेद नही हो सकता। इस प्रकार भिन्नता के साथ एकता भी रही हुई है। परमात्मा के प्रति एकनिष्ठा प्रीति करने मे भी एकता होनी चाहिए। हमे ऐसा प्रयत्न करना चाहिए कि सब लोग इस विषय मे एकमत हो और सभी परमात्मा के प्रति एकनिष्ठा प्रीति रखे। ऊपर से कुछ और भीतर से कुछ हो, ऐसा नही होना चाहिए।

कहा जा सकता है कि भगवान् अजितनाथ के प्रति एकनिष्ठा प्रीति रखने मे एकमत हो जाने की जो बात आप कहते है, वह समस्त जगत् के लिए है या सिर्फ जैनो के लिए ? भगवान् अजीतनाथ को सिर्फ जैनधर्म के अनुयायी ही मानते हैं। इससे यह अनुमान होता है कि आपका कथन केवल जैनो के लिए ही है।

इसका उत्तर यह है कि प्रत्येक विवेकवान् पुरुष यही कहेगा कि भगवान् अजितनाथ सारे जगत् के हैं। वे किसी वर्ग विशेष के नही, किसी खास जाति के नही हैं। अजित उसे कहते हैं जो किसी से हारा न हो, किन्तु जिसने सब

वचन और मन की विरूपता का त्याग करके—हृदय मे विरोधी भाव न रखकर परमात्मा के साथ एकनिष्ठा प्रीति धारण करें। इस प्रकार का हार्दिक ध्येय होने पर ही आत्मा का कल्याण हो सकता है।

ससार में सब की मति एक सी नही होती। कहावत है— 'मुण्डे मुण्डे मतिर्भिन्ना।' अर्थात् सब की मति न्यारी-न्यारी होती है। लेकिन इस भिन्नता मे भी कही न कही एकता भी मिलती है। सूर्य ससार को प्रकाश दे रहा है इस कथन मे किसी का मतभेद नही हो सकता। इस प्रकार भिन्नता के साथ एकता भी रही हुई है। परमात्मा के प्रति एकनिष्ठा प्रीति करने मे भी एकता होनी चाहिए। हमे ऐसा प्रयत्न करना चाहिए कि सब लोग इस विषय मे एकमत हो और सभी परमात्मा के प्रति एकनिष्ठा प्रीति रखे। ऊपर से कुछ और भीतर से कुछ हो, ऐसा नहीं होना चाहिए।

कहा जा सकता है कि भगवान् अजितनाथ के प्रति एकनिष्ठा प्रीति रखने मे एकमत हो जाने की जो बात आप कहते है, वह समस्त जगत् के लिए है या सिर्फ जैनो के लिए? भगवान् अजीतनाथ को सिर्फ जैनधर्म के अनुयायी ही मानते हैं। इससे यह अनुमान होता है कि आपका कथन केवल जैनो के लिए ही है।

इसका उत्तर यह है कि प्रत्येक विवेकवान् पुरुष यही कहेगा कि भगवान् अजितनाथ सारे जगत् के हैं। वे किसी वर्ग विशेष के नही, किसी खास जाति के नही हैं। अजित उसे कहते हैं जो किसी से हारा न हो, किन्तु जिसने सब

कडाण कम्माण न मोक्ख अत्थि ।

अर्थात्—भोगे बिना किये गये कर्मों का नाश नही हो सकता । इस प्रकार जब किये कर्म भोगने ही पड़ते हैं तो भगवान् की शरण लेने से क्या लाभ है ? अगर बिना भोगे ही कर्मों का नाश हो जाता है तो शास्त्र के कथन मे बाधा आती है । इस प्रकार इस प्रश्न का समाधान क्या है ?

इस प्रकार के प्रश्न के उत्तर मे, सक्षेप में यही कहा जा सकता है कि कर्म के भोगने के दो मार्ग हैं । उदय के मार्ग से भी कर्म भोगे जा सकते हैं और क्षय के मार्ग से भी भोगे जा सकते हैं । भगवान् अजितनाथ की शरण लेने पर भी कर्म भोगने तो पडते ही हैं, किन्तु उदय के मार्ग से नही, किन्तु क्षय के मार्ग से भोगने पडते हैं । उदय-मार्ग की अपेक्षा क्षय–मार्ग छोटा है । इस प्रकार भगवान् अजित-नाथ की शरण लेने से भी कर्मों का नाश होता है । डाक्टर वही है जो रोग मिटाता है—जो शरीर के रोग के परमाणुओ को अलग करता है । ऐसा करने वाला ही डाक्टर माना जाता है मगर डाक्टर बेचारा शारीरिक रोग ही दूर कर सकता है । आध्यात्मिक रोग मिटाना उसके सामर्थ्य से परे है । आत्मा के रोग केवल परमात्मा ही मिटा सकता है और जो आत्मा के रोग मिटाता है, वही परमात्मा है । परमात्मा की शरण लिये बिना आत्मा के कर्म रोग नही मिट सकते । अतएव परमात्मा की शरण जाना चाहिए । अगर आपको पूर्णरूप से नीरोग होना है तो परमात्मा की शरण अनन्य भाव से ग्रहण करो ।

ससार मे शायद ही कोई व्यक्ति मिले जो अपनी

कडाण कम्माण न मोक्ख अत्थि ।

अर्थात्—भोगे बिना किये गये कर्मों का नाश नहीं हो सकता । इस प्रकार जब किये कर्म भोगने ही पड़ते हैं तो भगवान् की शरण लेने से क्या लाभ है ? अगर बिना भोगे ही कर्मों का नाश हो जाता है तो शास्त्र के कथन में बाधा आती है । इस प्रकार इस प्रश्न का समाधान क्या है ?

इस प्रकार के प्रश्न के उत्तर मे, सक्षेप में यही कहा जा सकता है कि कर्म के भोगने के दो मार्ग हैं । उदय के मार्ग से भी कर्म भोगे जा सकते हैं और क्षय के मार्ग से भी भोगे जा सकते हैं । भगवान् अजितनाथ की शरण लेने पर भी कर्म भोगने तो पडते ही हैं, किन्तु उदय के मार्ग से नही, किन्तु क्षय के मार्ग से भोगने पडते हैं । उदय-मार्ग की अपेक्षा क्षय-मार्ग छोटा है । इस प्रकार भगवान् अजित-नाथ की शरण लेने से भी कर्मों का नाश होता है । डाक्टर वही है जो रोग मिटाता है—जो शरीर के रोग के परमाणुओ को अलग करता है । ऐसा करने वाला ही डाक्टर माना जाता है मगर डाक्टर बेचारा शारीरिक रोग ही दूर कर सकता है । आध्यात्मिक रोग मिटाना उसके सामर्थ्य से परे है । आत्मा के रोग केवल परमात्मा ही मिटा सकता है और जो आत्मा के रोग मिटाता है, वही परमात्मा है । परमात्मा की शरण लिये बिना आत्मा के कर्म रोग नही मिट सकते । अतएव परमात्मा की शरण जाना चाहिए । अगर आपको पूर्णरूप से नीरोग होना है तो परमात्मा की शरण अनन्य भाव से ग्रहण करो ।

ससार मे शायद ही कोई व्यक्ति मिले जो अपनी

जब परमात्मा की शरण मे पहुचने के अनेक मार्ग बतलाये गये हैं तो सहज ही प्रश्न खडा होता है कि हमें उनमे से किस मार्ग का अवलम्बन करना चाहिए ? हमारे लिए कौन-सा मार्ग सरल और सुविधा-जनक होगा ? इस सम्बन्ध मे कोई भी निश्चय करने के लिए हम सबको एकमत हो जाना चाहिए। एकमत होकर ही किसी मार्ग का निश्चय करना उचित है। शास्त्रकार परमात्मा की शरण में पहुचने के लिए एक मार्ग की विशेप रूप से सूचना करते हैं। उनका कथन है कि अवसर को समझो और जो अवसर आया है उसे मत खोओ। हाथ आये अवसर को खो देना बडी मूर्खता है।

किस प्रकार अवसर को जानना चाहिए और किस प्रकार उसका सदुपयोग कर लेना चाहिए, इस विपय मे आचारागसूत्र मे एक कल्पना की गई है। उसमें कहा गया है—मानो किसी कारागार मे कुछ ऐसे कैदी आये, जिनके मुक्त होने की कोई अवधि नही थी। जेलर ने उनसे कह रखा था—अगर कुदरत ही तुम्हारी किसी प्रकार सहायता करे तो तुम्हे छुटकारा मिल सकता है। अन्यथा छुटकारा पाने का और कोई उपाय नही है।

वेचारे उदास और निराश कैदी जेलखाने मे पडे थे। संयोगवश एक रात्रि में मूसलाधार पानी वरसा। पुरानी दीवाल गिर पडी। इसी समय विजली चमकी। एक कैदी ने विजली के प्रकाश में देखा कि जेल की दीवार टूट गिर पड़ी है और जेल से निकल भागने का यही उत्तम अवसर है। मानो, कुदरत ने हमारी सहायता की है। अब

जब परमात्मा की शरण मे पहुचने के अनेक मार्ग बतलाये गये हैं तो सहज ही प्रश्न खडा होता है कि हमें उनमे से किस मार्ग का अवलम्बन करना चाहिए ? हमारे लिए कौन-सा मार्ग सरल और सुविधा-जनक होगा ? इस सम्बन्ध मे कोई भी निश्चय करने के लिए हम सबको एकमत हो जाना चाहिए। एकमत होकर ही किसी मार्ग का निश्चय करना उचित है। शास्त्रकार परमात्मा की शरण में पहुचने के लिए एक मार्ग की विशेष रूप से सूचना करते हैं। उनका कथन है कि अवसर को समझो और जो अवसर आया है उसे मत खोओ। हाथ आये अवसर को खो देना बडी मूर्खता है।

किस प्रकार अवसर को जानना चाहिए और किस प्रकार उसका सदुपयोग कर लेना चाहिए, इस विषय मे आचारागसूत्र मे एक कल्पना की गई है। उसमें कहा गया है—मानो किसी कारागार मे कुछ ऐसे कैदी आये, जिनके मुक्त होने की कोई अवधि नही थी। जेलर ने उनसे कह रखा था—अगर कुदरत ही तुम्हारी किसी प्रकार सहायता करे तो तुम्हे छुटकारा मिल सकता है। अन्यथा छुटकारा पाने का और कोई उपाय नही है।

वेचारे उदास और निराश कैदी जेलखाने मे पडे थे। संयोगवश एक रात्रि में मूसलाधार पानी वरसा। पुरानी दीवाल गिर पडी। इसी समय विजली चमकी। एक कैदी ने विजली के प्रकाश में देखा कि जेल की दीवार टूट गिर पड़ी है और जेल से निकल भागने का यही उत्तम अवसर है। मानो, कुदरत ने हमारी सहायता की है। अव

इस अवसर को साधने के लिए परमात्मा की शरण मे जाओ और ससार-कारागार के कष्टो से बचो।

ससार वही कहलाता है जिसमे कर्म के आधीन होकर जीव परिभ्रमण करते हैं। यह परिभ्रमण कारण से ही होता है—बिना कारण नही। परिभ्रमण के कारणों की खोज ज्ञानियो ने की है। वे इस परिणाम पर पहुचे हैं कि राग और द्वेष के कारण ही जीव को परिभ्रमण करना पडता है। राग और द्वेष हमारे द्वारा ही उपार्जन किये गये हैं और हम ही उनका फल भोगते हैं। ऐसी अवस्था मे परमात्मा को बीच में घसीटने की क्या आवश्यकता है? हमारे किये राग द्वेष के विषय मे परमात्मा क्या कर सकता है?

इसका सरल और सक्षिप्त उत्तर यह है कि परमात्मा की शरण मे जाने से राग-द्वेष मिट जाते हैं, अतएव परमात्मा की शरण में जाने की आवश्यकता है। यह सही है कि राग और द्वेष आत्मा के किये हुए हैं, फिर भी उनका विनाश किया जा सकता है। बल्कि यो कहना चाहिए कि राग-द्वेष आत्मा के किये हुए हैं, इसी कारण आत्मा उनका अन्त भी कर सकता है। अगर राग-द्वेप का अभाव सम्भव न होता तो परमात्मा की शरण मे जाने की आवश्यकता ही नही थी। राग-द्वेप का नाश हो सकता है, इस बात का प्रमाण यह है कि उनमे न्यूनाधिकता होती है। जो वस्तु न्यून और अधिक होती है वह कभी मिट भी सकती है। जो वस्तु कभी न्यूनाधिक नही होती वह तो नही मिट सकती, पर न्यूनाधिक होने वाली का विनाश भी देखा

इस अवसर को साधने के लिए परमात्मा को शरण मे जाओ और ससार-कारागार के कष्टो से बचो।

ससार वही कहलाता है जिसमे कर्म के आधीन होकर जीव परिभ्रमण करते हैं। यह परिभ्रमण कारण से ही होता है—विना कारण नही। परिभ्रमण के कारणों की खोज ज्ञानियो ने की है। वे इस परिणाम पर पहुचे हैं कि राग और द्वेष के कारण ही जीव को परिभ्रमण करना पडता है। राग और द्वेष हमारे द्वारा ही उपाजन किये गये हैं और हम ही उनका फल भोगते हैं। ऐसी अवस्था मे परमात्मा को बीच में घसीटने की क्या आवश्यकता है? हमारे किये राग द्वेष के विषय मे परमात्मा क्या कर सकता है?

इसका सरल और सक्षिप्त उत्तर यह है कि परमात्मा की शरण मे जाने से राग-द्वेष मिट जाते हैं, अतएव परमात्मा की शरण में जाने की आवश्यकता है। यह सही है कि राग और द्वेप आत्मा के किये हुए हैं, फिर भी उनका विनाश किया जा सकता है। वल्कि यो कहना चाहिए कि राग-द्वेप आत्मा के किये हुए हैं, इसी कारण आत्मा उनका अन्त भी कर सकता है। अगर राग-द्वेप का अभाव सम्भव न होता तो परमात्मा की शरण मे जाने की आवश्यकता ही नही थी। राग-द्वेप का नाश हो सकता है, इस वात का प्रमाण यह है कि उनमे न्यूनाधिकता होती है। जो वस्तु न्यून और अधिक होती है वह कभी मिट भी सकती है। जो वस्तु कभी न्यूनाधिक नही होती वह तो नही मिट सकती, पर न्यूनाधिक होने वाली का विनाश भी देखा

आवश्यकता है। हाथ से आपरेशन भी किया जाता है और छुरा भी मारा जाता है। लेकिन करने योग्य क्या है और न करने योग्य क्या है? अकबर ने कहा है कि मजहबी झगडे त्यागकर एक बात सीख लो कि इन हाथो से क्या करना चाहिए और क्या नही करना चाहिए?

> यू कर यूं कर यू न कर, यूं करिया यू होय।
> कहत अकव्वर वादशाह, जीत न सकता कोय॥

अर्थात्—हाथ से दूसरे को आश्वासन दे, सन्तोष दे और दान दे। किसी को थप्पड़ मत मार। अगर थप्पड मारेगा या दूसरे के गले पर हाथ चलायेगा तो तुझे ऐसा ही फल भुगतना पडेगा। तुझे जो शक्ति मिली है उसका सदुपयोग कर। दुरुपयोग मत कर। जो अपनी शक्ति का लाभ दूसरे को नही देता वह ससार मे आदर नही पाता। सूर्य अगर दूसरो को प्रकाश न दे तो उसे कौन सूर्य कहेगा? कौन उसका आदर करेगा? इसी प्रकार आप अपनी शक्ति का लाभ दूसरो को नही पहुचाते तो किस प्रकार आपकी प्रशसा हो सकती है?

विजली का प्रकाश प्राप्त करने के लिए आपको पैसे देने पडते हैं। लेकिन सूर्य का प्रकाश बिना मूल्य चुकाये ही मिल जाता है? पैसे न चुकाने पर बिजली का प्रकाश बन्द हो जाता है मगर सूर्य का प्रकाश पैसे न देने पर भी बन्द नही होता। आप सूर्य के प्रकाश का उपयोग करते हैं और बदले मे पैसे नही देते। फिर भी उस प्रकाश का बदला किसी रूप मे तो चुकाना ही चाहिए। इसलिए मैं कहता हूं कि आपको थोड़ी या अधिक जितनी भी शक्ति

आवश्यकता है। हाथ से आपरेशन भी किया जाता है और छुरा भी मारा जाता है। लेकिन करने योग्य क्या है और न करने योग्य क्या है ? अकबर ने कहा है कि मजहबी झगडे त्यागकर एक बात सीख लो कि इन हाथो से क्या करना चाहिए और क्या नही करना चाहिए ?

> यू कर यूं कर यू न कर, यूं करिया यू होय।
> कहत अकब्बर बादशाह, जीत न सकता कोय।।

अर्थात्—हाथ से दूसरे को आश्वासन दे, सन्तोष दे और दान दे। किसी को थप्पड़ मत मार। अगर थप्पड मारेगा या दूसरे के गले पर हाथ चलायेगा तो तुझे ऐसा ही फल भुगतना पडेगा। तुझे जो शक्ति मिली है उसका सदुपयोग कर। दुरुपयोग मत कर। जो अपनी शक्ति का लाभ दूसरे को नही देता वह ससार मे आदर नही पाता। सूर्य अगर दूसरो को प्रकाश न दे तो उसे कौन सूर्य कहेगा ? कौन उसका आदर करेगा ? इसी प्रकार आप अपनी शक्ति का लाभ दूसरो को नही पहुचाते तो किस प्रकार आपकी प्रशसा हो सकती है ?

बिजली का प्रकाश प्राप्त करने के लिए आपको पैसे देने पडते हैं। लेकिन सूर्य का प्रकाश बिना मूल्य चुकाये ही मिल जाता है ? पैसे न चुकाने पर बिजली का प्रकाश बन्द हो जाता है मगर सूर्य का प्रकाश पैसे न देने पर भी बन्द नही होता। आप सूर्य के प्रकाश का उपयोग करते है और बदले मे पैसे नही देते। फिर भी उस प्रकाश का बदला किसी रूप मे तो चुकाना ही चाहिए। इसलिए मैं कहता हूं कि आपको थोड़ी या अधिक जितनी भी शक्ति

जिससे किसी का सुधार हो और लोगो को धर्म की सहायता मिले। उदाहरण के लिए— यहां अशुचि साफ करने के लिए तो भगी को आने दिया गया था मगर यदि वह मर्यादा से बैठकर व्याख्यान सुनने के लिए आना चाहे तो उसे नही आने दिया जायेगा ! यह 'जाओ-जाओ' नही तो क्या है ? मैं उचित और न्याय-सगत मर्यादाओ को भंग कर देने के लिए नही कहता। सिर की जगह सिर और पैर की जगह पैर तो रहेगा ही, मगर ऐसा व्यवहार करना भी उचित नही कि जिससे सिर और पैर मे बहुत दूरी पड़ जाये ! कम से कम मीठे वचन बोलकर तो सब को सन्तोष दिया जाना चाहिए।

पूर्व समय मे प्रत्येक व्यक्ति से मीठे शब्द कहे जाते थे, चाहे वह कितना ही नीच श्रेणी का क्यो न माना जाता हो। जब मैं छोटा था तो भगिन, धोबिन, नाइन आदि को भी काकी, मा आदि कहता था और उस समय ऐसा ही कहने की पद्धति थी। लेकिन आजकल इन सबका तिरस्कार किया जाता है। अवसर का विचार न करना और एकदम उनका तिरस्कार करना भारत के लिए बहुत हानिप्रद सिद्ध हुआ है। जिस कमी के कारण उन लोगो का तिरस्कार किया जाता है, उस कमी को दूर करने का प्रयत्न ही नही किया गया। इस दशा मे प्रयत्न किया गया होता तो उनमें वह कमियां रह ही नही पाती। बहुत अर्से के बाद गाधीजी ने इस ओर ध्यान दिया है। उन्होने जो प्रयत्न किया है वह सभी को मालूम है। मैंने पोरबन्दर में गांधीजी का जन्मस्थान देखा है। कभी-कभी मैं सोचने लगता हूं कि उस अन्धेरे कमरे मे जन्म लेने वाले गाधीजी

जिससे किसी का सुधार हो और लोगो को धर्म की सहायता मिले । उदाहरण के लिए— यहां अशुचि साफ करने के लिए तो भगी को आने दिया गया था मगर यदि वह मर्यादा से बैठकर व्याख्यान सुनने के लिए आना चाहे तो उसे नही आने दिया जायेगा ! यह 'जाओ-जाओ' नही तो क्या है ? मैं उचित और न्याय-सगत मर्यादाओ को भंग कर देने के लिए नही कहता । सिर की जगह सिर और पैर की जगह पैर तो रहेगा ही, मगर ऐसा व्यवहार करना भी उचित नही कि जिससे सिर और पैर मे बहुत दूरी पड़ जाये ! कम से कम मीठे वचन बोलकर तो सब को सन्तोष दिया जाना चाहिए ।

पूर्व समय मे प्रत्येक व्यक्ति से मीठे शब्द कहे जाते थे, चाहे वह कितना ही नीच श्रेणी का क्यो न माना जाता हो । जब मैं छोटा था तो भगिन, धोबिन, नाइन आदि को भी काकी, मा आदि कहता था और उस समय ऐसा ही कहने की पद्धति थी । लेकिन आजकल इन सबका तिरस्कार किया जाता है । अवसर का विचार न करना और एकदम उनका तिरस्कार करना भारत के लिए बहुत हानिप्रद सिद्ध हुआ है । जिस कमी के कारण उन लोगो का तिरस्कार किया जाता है, उस कमी को दूर करने का प्रयत्न ही नही किया गया । इस दशा मे प्रयत्न किया गया होता तो उनमें वह कमियां रह ही नही पाती । बहुत अर्से के बाद गाधीजी ने इस ओर ध्यान दिया है । उन्होने जो प्रयत्न किया है वह सभी को मालूम है । मैंने पोरबन्दर में गांधीजी का जन्मस्थान देखा है । कभी-कभी मैं सोचने लगता हूं कि उस अन्धेरे कमरे मे जन्म लेने वाले गाधीजी

विपरीत यदि भोजन निकृष्ट श्रेणी का हो मगर खिलाने वाला नम्रतापूर्वक हाथ जोड़कर कहने लगे—'मेरे घर जैसा-तैसा भोजन करना स्वीकार करके आपने वडा अनुग्रह किया है, इस खराब अन्न को भी आप मेरे स्नेह को मधुरता से रुचिकर वना लीजिये।' इस प्रकार मधुर वचनों के साथ मिला हुआ साधारण भोजन भी आपको प्रिय लगेगा। यद्यपि पहला भोजन दूसरे भोजन को अपेक्षा अधिक उत्तम है फिर भी आपके लिए वह विष सरीखा क्यों लगता है ? और दूसरा भोजन निकृष्ट होने पर भी प्रीतिजनक क्यो मालूम होता है ? इसका एकमात्र कारण वचनो मे अन्तर है। एक जगह वचन की मधुरता से भोजन मधुर हो गया और दूसरी जगह वचन की कटुता के कारण भोजन कटुक हो गया।

आप और कुछ नही दे सकते तो मीठे वचन तो दे सकते हैं। मीठे वचनो के लिए काई कीमत नही चुकानी पड़ती। मीठे वचन बोलने मे कोई विशिष्ट श्रम या कठिनाई भी नही होती। वे सवके लिए सर्वत्र सुलभ हैं। कहावत है— वचने का दरिद्रता।' अर्थात्—मीठे वचन बोलने मे काहे को कजूसी। ऐसी सस्ती, सुलभ और उपयोगी वस्तु का भी आप उपयोग न करे तो कितने विषाद की वात है ! जव कोई अकिंचन दीन भिखारी आपके घर भीख मागने आता है तो आप उसके साथ कैसा व्यवहार करते हैं ? उसे अपशव्दो का दान तो नही देते ? गरीव वेचारा वडी आशा वांधकर आपके द्वार पर आता है और अतिशय दीनता के साथ आपके आगे हाथ पसारता है। क्या इसलिए कि आप उसे डांट-फटकार कर भगा दे ?

विपरीत यदि भोजन निकृष्ट श्रेणी का हो मगर खिलाने वाला नम्रतापूर्वक हाथ जोडकर कहने लगे—'मेरे घर जैसा-तैसा भोजन करना स्वीकार करके आपने बडा अनुग्रह किया है, इस खराब अन्न को भी आप मेरे स्नेह की मधुरता से रुचिकर बना लीजिये।' इस प्रकार मधुर वचनों के साथ मिला हुआ साधारण भोजन भी आपको प्रिय लगेगा। यद्यपि पहला भोजन दूसरे भोजन की अपेक्षा अधिक उत्तम है फिर भी आपके लिए वह विष सरीखा क्यों लगता है ? और दूसरा भोजन निकृष्ट होने पर भी प्रीति-जनक क्यो मालूम होता है ? इसका एकमात्र कारण वचनो मे अन्तर है। एक जगह वचन की मधुरता से भोजन मधुर हो गया और दूसरी जगह वचन की कटुता के कारण भोजन कटुक हो गया।

आप और कुछ नही दे सकते तो मीठे वचन तो दे सकते हैं। मीठे वचनो के लिए काई कीमत नही चुकानी पड़ती। मीठे वचन बोलने मे कोई विशिष्ट श्रम या कठिनाई भी नही होती। वे सबके लिए सर्वत्र सुलभ हैं। कहावत है—'वचने का दरिद्रता।' अर्थात्—मीठे वचन बोलने मे काहे की कजूसी। ऐसी सस्ती, सुलभ और उपयोगी वस्तु का भी आप उपयोग न करे तो कितने विषाद की बात है ! जब कोई अकिंचन दीन भिखारी आपके घर भीख मागने आता है तो आप उसके साथ कैसा व्यवहार करते हैं ? उसे अपशब्दो का दान तो नही देते ? गरीब बेचारा बडी आशा बांधकर आपके द्वार पर आता है और अतिशय दीनता के साथ आपके आगे हाथ पसारता है। क्या इसलिए कि आप उसे डांट-फटकार कर भगा दे ?

जिससे किसी का सुधार हो और लोगों को धर्म की सहायता मिले। उदाहरण के लिए— यहा अशुचि साफ करने के लिए तो भगी को आने दिया गया था मगर यदि वह मर्यादा से बैठकर व्याख्यान सुनने के लिए आना चाहे तो उसे नही आने दिया जायेगा ! यह 'जाओ-जाओ' नही तो क्या है ? मैं उचित और न्याय-सगत मर्यादाओ को भग कर देने के लिए नही कहता। सिर की जगह सिर और पैर की जगह पैर तो रहेगा ही, मगर ऐसा व्यवहार करना भी उचित नही कि जिससे सिर और पैर मे बहुत दूरी पड़ जाये ! कम से कम मीठे वचन बोलकर तो सब को सन्तोष दिया जाना चाहिए।

पूर्व समय मे प्रत्येक व्यक्ति से मीठे शब्द कहे जाते थे, चाहे वह कितना ही नीच श्रेणी का क्यो न माना जाता हो। जब मैं छोटा था तो भगिन, धोबिन, नाइन आदि को भी काकी, मा आदि कहता था और उस समय ऐसा ही कहने की पद्धति थी। लेकिन आजकल इन सबका तिरस्कार किया जाता है। अवसर का विचार न करना और एकदम उनका तिरस्कार करना भारत के लिए बहुत हानिप्रद सिद्ध हुआ है। जिस कमी के कारण उन लोगो का तिरस्कार किया जाता है, उस कमी को दूर करने का प्रयत्न ही नही किया गया। इस दशा मे प्रयत्न किया गया होता तो उनमे वह कमियां रह ही नही पाती। बहुत अर्से के बाद गाधीजी ने इस ओर ध्यान दिया है। उन्होने जो प्रयत्न किया है वह सभी को मालूम है। मैंने पोरबन्दर में गांधीजी का जन्मस्थान देखा है। कभी-कभी मैं सोचने लगता हूं कि उस अन्धेरे कमरे मे जन्म लेने वाले गांधीजी

जिससे किसी का सुधार हो और लोगों को धर्म की सहायता मिले। उदाहरण के लिए— यहा अशुचि साफ करने के लिए तो भगी को आने दिया गया था मगर यदि वह मर्यादा से बैठकर व्याख्यान सुनने के लिए आना चाहे तो उसे नही आने दिया जायेगा ! यह 'जाओ-जाओ' नही तो क्या है ? मैं उचित और न्याय-सगत मर्यादाओ को भग कर देने के लिए नही कहता। सिर की जगह सिर और पैर की जगह पैर तो रहेगा ही, मगर ऐसा व्यवहार करना भी उचित नही कि जिससे सिर और पैर मे बहुत दूरी पड़ जाये ! कम से कम मीठे वचन बोलकर तो सब को सन्तोष दिया जाना चाहिए।

पूर्व समय मे प्रत्येक व्यक्ति से मीठे शब्द कहे जाते थे, चाहे वह कितना ही नीच श्रेणी का क्यो न माना जाता हो। जब मैं छोटा था तो भगिन, धोबिन, नाइन आदि को भी काकी, मा आदि कहता था और उस समय ऐसा ही कहने की पद्धति थी। लेकिन आजकल इन सबका तिरस्कार किया जाता है। अवसर का विचार न करना और एकदम उनका तिरस्कार करना भारत के लिए बहुत हानिप्रद सिद्ध हुआ है। जिस कमी के कारण उन लोगो का तिरस्कार किया जाता है, उस कमी को दूर करने का प्रयत्न ही नही किया गया। इस दशा मे प्रयत्न किया गया होता तो उनमे वह कमियां रह ही नही पाती। बहुत अर्से के बाद गाधीजी ने इस ओर ध्यान दिया है। उन्होने जो प्रयत्न किया है वह सभी को मालूम है। मैंने पोरबन्दर में गांधीजी का जन्मस्थान देखा है। कभी-कभी मैं सोचने लगता हूं कि उस अन्धेरे कमरे मे जन्म लेने वाले गांधीजी

जब वह सभी के लिए अच्छा है तो उनकी बात पर ध्यान देना उचित है या नही ?

आपको जन्मकाल से ही अहिंसा के सस्कार मिले हैं। अतएव आपके ऊपर विशेष उत्तरदायित्व है आपको सोचना चाहिए कि अहिंसक के वस्त्र और अहिंसक का भोजन कैसा हुआ करता है ? लाख रुपये आपके सामने रखकर कोई कहे कि यह रुपये ले लो और एक बकरे को मार डालो। तो आप बकरा मारने के लिए तैयार नही हो सकते। प्रत्यक्ष मे तो आप इस प्रकार अहिंसा का विचार रखते हैं किन्तु अप्रत्यक्ष रूप से किस-किस तरह की हिंसा मे शामिल हो जाते हैं या सहायता करते हैं, यह भी देखना-सोचना चाहिए। बात यह है कि आप अप्रत्यक्ष रूप से हिंसा में सहायता करने मे अभ्यस्त हो गये हैं। इसी कारण उस ओर आपका ध्यान नही जाता है और आप उस हिंसा का विरोध नही करते हैं। इस बात को दृष्टि में रखकर ही मानो वेद को पूर्वोक्त श्रुति में यह कहा गया है कि सुकृत करने की इच्छा कर। हे आत्मन् ! अगर तुझमें पाप हैं तो भी घबरा मत, किन्तु सुकृत करने की इच्छा कर। तेरे भीतर अगर पापराशि है तो पुण्यराशि भी है। संसार मे एक भी प्राणी ऐसा नही है जो एकान्त पुण्यशाली या एकान्त पापात्मा हो। सर्वार्थसिद्धि विमान का आयुष्य बाधने वाले मे भी ज्ञानावरणीय आदि कर्मरूप पाप होता ही है। इसी प्रकार नरक के प्राणियो मे भी किसी न किसी रूप मे पुण्य विद्य-मान रहता है। इस प्रकार प्रत्येक संसारी आत्मा में पुण्य और पाप का अस्तित्व रहता है।

आत्मा में पुण्य और पाप दोनो हैं, फिर भी वेद का

जब वह सभी के लिए अच्छा है तो उनकी बात पर ध्यान देना उचित है या नही ?

आपको जन्मकाल से ही अहिंसा के संस्कार मिले हैं। अतएव आपके ऊपर विशेष उत्तरदायित्य है आपको सोचना चाहिए कि अहिंसक के वस्त्र और अहिंसक का भोजन कैसा हुआ करता है ? लाख रुपये आपके सामने रखकर कोई कहे कि यह रुपये ले लो और एक बकरे को मार डालो। तो आप बकरा मारने के लिए तैयार नही हो सकते। प्रत्यक्ष मे तो आप इस प्रकार अहिंसा का विचार रखते हैं किन्तु अप्रत्यक्ष रूप से किस-किस तरह की हिंसा मे शामिल हो जाते हैं या सहायता करते हैं, यह भी देखना-सोचना चाहिए। बात यह है कि आप अप्रत्यक्ष रूप से हिंसा में सहायता करने मे अभ्यस्त हो गये हैं। इसी कारण उस ओर आपका ध्यान नही जाता है और आप उस हिंसा का विरोध नही करते हैं। इस बात को दृष्टि में रखकर ही मानो वेद को पूर्वोक्त श्रुति में यह कहा गया है कि सुकृत करने की इच्छा कर। हे आत्मन् ! अगर तुझमें पाप हैं तो भी घबरा मत, किन्तु सुकृत करने की इच्छा कर। तेरे भीतर अगर पापराशि है तो पुण्यराशि भी है। संसार मे एक भी प्राणी ऐसा नही है जो एकान्त पुण्यशाली या एकान्त पापात्मा हो। सर्वार्थसिद्धि विमान का आयुष्य बाधने वाले मे भी ज्ञानावरणीय आदि कर्मरूप पाप होता ही है। इसी प्रकार नरक के प्राणियो मे भी किसी न किसी रूप मे पुण्य विद्य-मान रहता है। इस प्रकार प्रत्येक संसारी आत्मा में पुण्य और पाप का अस्तित्व रहता है।

आत्मा में पुण्य और पाप दोनो हैं, फिर भी वेद का

कारण यही है कि आत्मा अपने पापो को क्षीण करने का जैसा प्रयत्न मनुष्यभव मे कर सकता है, वैसा प्रयत्न देवगति में नही कर सकता ।

देवो से आप बड़े हैं । फिर भी आप देवो से किसी चीज की याचना तो नही करते ? अगर आप अपने धर्म पर दृढ़ रहे तो देव आपके दास हैं। शास्त्र में कहा है—

देवा वि त नमसति जस्स धम्मे सया मणो ।

कहने का आशय यह है कि मनुष्यजन्म सुकृत करने के लिए बहुत उपयुक्त है । अतएव इसे पाकर सुकृत कर लो । अगर आप सुकृत करते रहे तो इस मार्ग से भी परमात्मा की शरण में पहुच सकते हैं और अपने पापों को नष्ट कर सकते हैं । मगर इसके लिए मन को दृढ करने की आवश्यकता है । जिस का मन प्रबल नही है, जिसकी इच्छाशक्ति मे दृढता नही है वह किसी भी काम को भलीभाति सम्पन्न नही कर सकता । जो अधूरे मन से कार्य आरभ करता है वह जरा सी कठिनाई आते ही उसे छाड बैठता है । यही कारण है कि निर्वल मन वाला व्यक्ति किसी भी कार्य को पूर्णता पर नही पहुंचा सकता । इस सबध मे शास्त्रो में और ग्रन्थो में अनेक उदाहरण दिये गये हैं, जिन्हे समय-समय पर मैं आपको सुनाता भी रहता हूं । आज भी पाण्डव चरित की एक घटना सुनाता हू ।

भलीभाति विचार-विमर्श करने के पश्चात् श्रीकृष्ण, पाण्डवो की ओर से सधि कराने के लिए दुर्योधन के पास गये थे । मगर सधि नही हुई । दुर्योधन दुराचारी था, उसने साफ साफ कह दिया कि युद्ध के विना मैं सुई की

कारण यही है कि आत्मा अपने पापो को क्षीण करने का जैसा प्रयत्न मनुष्यभव मे कर सकता है, वैसा प्रयत्न देवगति में नही कर सकता।

देवो से आप बड़े हैं। फिर भी आप देवो से किसी चीज की याचना तो नही करते? अगर आप अपने धर्म पर दृढ़ रहे तो देव आपके दास हैं। शास्त्र में कहा है—

देवा वि त नमसति जस्स धम्मे सया मणो।

कहने का आशय यह है कि मनुष्यजन्म सुकृत करने के लिए बहुत उपयुक्त है। अतएव इसे पाकर सुकृत कर लो। अगर आप सुकृत करते रहे तो इस मार्ग से भी परमात्मा की शरण में पहुच सकते हैं और अपने पापों को नष्ट कर सकते हैं। मगर इसके लिए मन को दृढ करने की आवश्यकता है। जिस का मन प्रबल नही है, जिसकी इच्छाशक्ति मे दृढता नही है वह किसी भी काम को भलीभाति सम्पन्न नही कर सकता। जो अधूरे मन से कार्य आरभ करता है वह जरा सी कठिनाई आते ही उसे छाड बैठता है। यही कारण है कि निर्बल मन वाला व्यक्ति किसी भी कार्य को पूर्णता पर नही पहुंचा सकता। इस सबध मे शास्त्रो में और ग्रन्थो में अनेक उदाहरण दिये गये हैं, जिन्हे समय-समय पर मैं आपको सुनाता भी रहता हूं। आज भी पाण्डव चरित की एक घटना सुनाता हू।

भलीभाति विचार-विमर्श करने के पश्चात् श्रीकृष्ण, पाण्डवो की ओर से सधि कराने के लिए दुर्योधन के पास गये थे। मगर सधि नही हुई। दुर्योधन दुराचारी था, उसने साफ साफ कह दिया कि युद्ध के बिना मैं सुई की

कुन्दनपुर के राजा भीम के पुत्र रुक्म ने आमत्रण पाकर सोचा—युद्ध का आमन्त्रण आया है, अतएव सम्मिलित होना तो आवश्यक हो है।' इस अवसर पर घर में वैठा तो रह नही सकता। परन्तु प्रश्न यह है कि किस ओर जाना चाहिये ?

प्रश्न उपस्थित हो सकता है कि युद्ध का आमत्रण पाकर, सिर कटाने के लिए जाना क्या आवश्यक है ? आज के लोग विवाह की कु कुमपत्रिका भेजते हैं और पत्रिका पाने वाला प्राय· विवाह मे सम्मिलित होता है। लेकिन पहले के वीर पुरुप युद्ध का आमत्रण पाकर सर कटाने के लिए भी जाया करते थे। मेवाड का इतिहास देखो तो मालूम होगा कि किस तरह राजा लोग युद्ध का आमत्रण पाकर युद्ध के लिए जाया करते थे। वल्कि मेवाड़ के राणा की ओर से युद्ध का आमत्रण पाना और राणा की सहायता करना गौरव की वात समझी जाती थी। मगर आज वह वीरता कहा है ? आज ऐसी निर्बलता आ गई है कि युद्ध का नाम सुनते ही लोगो को वुखार चढ जाता है।

रुक्म ने सोचा—युद्धिष्ठिर का पक्ष वलवान है और न्याय भी उसी ओर है। अत युधिष्ठिर के पक्ष मे ही युद्ध करना चाहिए। लेकिन वहिन के विवाह के समय कृष्ण ने मेरा जो अपमान किया था, वह अव तक मेरे हृदय मे काटे की तरह चुभ रहा है। युद्ध मे उस अपमान का वदला लेना चाहिये। कठिनाई यह है कि कृष्ण स्वय युद्ध नही करेंगे। ऐसी स्थिति मे उन से वदला कैसे ले सकता हू ? मगर उनके मित्र का अपमान कर के मैं अपने अप-

कुन्दनपुर के राजा भीम के पुत्र रुक्म ने आमत्रण पाकर सोचा —युद्ध का आमत्रण आया है, अतएव सम्मिलित होना तो आवश्यक हो है।' इस अवसर पर घर में बैठा तो रह नही सकता। परन्तु प्रश्न यह है कि किस ओर जाना चाहिये ?

प्रश्न उपस्थित हो सकता है कि युद्ध का आमत्रण पाकर, सिर कटाने के लिए जाना क्या आवश्यक है ? आज के लोग विवाह की कु कुमपत्रिका भेजते हैं और पत्रिका पाने वाला प्राय· विवाह मे सम्मिलित होता है। लेकिन पहले के वीर पुरुप युद्ध का आमत्रण पाकर सर कटाने के लिए भी जाया करते थे। मेवाड का इतिहास देखो तो मालूम होगा कि किस तरह राजा लोग युद्ध का आमत्रण पाकर युद्ध के लिए जाया करते थे। वल्कि मेवाड़ के राणा की ओर से युद्ध का आमत्रण पाना और राणा की सहायता करना गौरव की वात समझी जाती थी। मगर आज वह वीरता कहा है ? आज ऐसी निर्बलता आ गई है कि युद्ध का नाम सुनते ही लोगो को वुखार चढ जाता है।

रुक्म ने सोचा—युद्धिष्ठिर का पक्ष वलवान है और न्याय भी उसी ओर है। अत युधिष्ठिर के पक्ष मे ही युद्ध करना चाहिए। लेकिन वहिन के विवाह के समय कृष्ण ने मेरा जो अपमान किया था, वह अव तक मेरे हृदय मे काटे की तरह चुभ रहा है। युद्ध मे उस अपमान का वदला लेना चाहिये। कठिनाई यह है कि कृष्ण स्वय युद्ध नही करेंगे। ऐसी स्थिति मे उन से वदला कैसे ले सकता हू ? मगर उनके मित्र का अपमान कर के मैं अपने अप-

जो सेना है उसका भी उचित सत्कार करो।

यह सुनकर रुक्म ने कहा— मैं आया तो हूं पर स्वागत-सत्कार करने से पहले एक वात का स्पष्टीकरण हो जाना चाहिए।

युधिष्ठिर—अगर कोई वात स्पष्टीकरण करने योग्य हो तो अवश्य ही उसका स्पष्टीकरण हो जाना चाहिए।

रुक्म— मेरे हाथ में यह जो धनुप है, इसका नाम विजय है। संसार मे तीन ही धनुप प्रसिद्ध हैं— सारग, गाडीव और विजय। सारग कृष्ण के पास है, गांडीव अर्जुन के पास है और यह विजय मेरे पास है। इन तीन मे से सारंग तो आपके काम नही आ सकता, क्योकि कृष्ण ने निरस्त्र रहने का निर्णय किया है। इस प्रकार अकेला गाडीव आपके पक्ष में रह गया है। मगर गांडीव, इस विजय की समानता नही कर सकता। यह विजय धनुष अकेला ही सम्पूर्ण कौरव-सेना पर विजय प्राप्त कर सकता है। कौरवों पर विजय पाने के लिए आप मे से किसी को भी कष्ट नही उठाना पड़ेगा। इस विजय की सहायता से मैं अकेला ही आपको विजयी बना सकता हूं। परन्तु एक वात का खुलासा हो जाना चाहिए। इसके लिए आप अर्जुन को बुलवाइये।

रुक्म के कहने से युधिष्ठिर ने अर्जुन को बुलवाया। रुक्म ने अर्जुन से कहा—यदि आप मेरे कथनानुसार एक कार्य करें तो मैं अपना समस्त वल आपको दे सकता हू। क्या आप मेरा कहा कार्य करेंगे ?

अर्जुन पहिले कार्य वतलाइए तो समझकर उत्तर

जो सेना है उसका भी उचित सत्कार करो ।

यह सुनकर रुक्म ने कहा— मैं आया तो हूं पर स्वागत-सत्कार करने से पहले एक बात का स्पष्टीकरण हो जाना चाहिए ।

युधिष्ठिर—अगर कोई बात स्पष्टीकरण करने योग्य हो तो अवश्य ही उसका स्पष्टीकरण हो जाना चाहिए ।

रुक्म— मेरे हाथ में यह जो धनुप है, इसका नाम विजय है । संसार मे तीन ही धनुप प्रसिद्ध हैं— सारग, गाडीव और विजय । सारग कृष्ण के पास है, गांडीव अर्जुन के पास है और यह विजय मेरे पास है । इन तीन मे से सारंग तो आपके काम नही आ सकता, क्योकि कृष्ण ने निरस्त्र रहने का निर्णय किया है । इस प्रकार अकेला गाडीव आपके पक्ष में रह गया है । मगर गांडीव, इस विजय की समानता नही कर सकता । यह विजय धनुष अकेला ही सम्पूर्ण कौरव-सेना पर विजय प्राप्त कर सकता है । कौरवों पर विजय पाने के लिए आप मे से किसी को भी कष्ट नही उठाना पड़ेगा । इस विजय की सहायता से मैं अकेला ही आपको विजयी बना सकता हूं । परन्तु एक बात का खुलासा हो जाना चाहिए। इसके लिए आप अर्जुन को बुलवाइये ।

रुक्म के कहने से युधिष्ठिर ने अर्जुन को बुलवाया। रुक्म ने अर्जुन से कहा—यदि आप मेरे कथनानुसार एक कार्य करें तो मैं अपना समस्त बल आपको दे सकता हू । क्या आप मेरा कहा कार्य करेंगे ?

अर्जुन पहिले कार्य बतलाइए तो समझकर उत्तर

की भाँति आनन्दपूर्वक रहिये, किन्तु यह आशा न रखिये कि अर्जुन आपकी शरण में आएगा । फिर भी अगर आप यह आशा नही त्याग सकते तो जैसी आपको इच्छा हो, वैसा कीजिये ।

अर्जुन का स्पष्ट उत्तर सुनकर रुक्म क्रुद्ध हो गया। वह कहने लगा— मैं इतनो विशाल सेना लेकर तुम्हारो सहायता के लिए आया हूं तुम इतने-से शब्द भी नही कह सकते ! अगर तुम इतना कह दो तो एक घडी के छठवे भाग मे ही मैं तुम्हे विजयी बना सकता हू और युधिष्ठिर के मस्तक पर राजमुकुट रखवा सकता हू ।

ऐसे प्रसग पर आपसे सलाह ली जाती तो आप अर्जुन को क्या सलाह देते ? शायद आप यही सलाह देते कि ऐसे नाजुक मौके पर रुक्म के आगे नम्र हो जाना और रुक्म के अभीष्ट शब्द कह देना ही उचित है । रुक्म को किसी भी प्रकार से अपने पक्ष मे रखना चाहिए । मगर अर्जुन वीर था । रुक्म ने उससे यह भी कह दिया था कि मेरा कहना न मानोगे तो अपनी मृत्यु समीप ही समझ लेना । मैं अभी तुम्हारे शत्रु के पक्ष मे मिल जाऊँगा । रुक्म की इस प्रकार की धमकी सुनकर भी अर्जुन ने परवाह नही की । अर्जुन ने यही कहा—अगर आपकी इच्छा विरुद्ध पक्ष मे जाने की है तो प्रसन्नता के साथ जा सकते हैं मैं आपकी इच्छा के विरुद्ध आपको रोकना नही चाहता। लेकिन आपके सामने इस प्रकार की दीनता नही दिखला सकता । आप कौरव-पक्ष मे सम्मिलित होने की सोचते हैं, मगर दुर्योधन आपसे अधिक बुद्धिमान् है । वह आपके चाहे

की भाँति आनन्दपूर्वक रहिये, किन्तु यह आशा न रखिये कि अर्जुन आपकी शरण में आएगा। फिर भी अगर आप यह आशा नही त्याग सकते तो जैसी आपकी इच्छा हो, वैसा कीजिये।

अर्जुन का स्पष्ट उत्तर सुनकर रुक्म क्रुद्ध हो गया। वह कहने लगा—मैं इतनी विशाल सेना लेकर तुम्हारी सहायता के लिए आया हूं तुम इतने-से शब्द भी नही कह सकते! अगर तुम इतना कह दो तो एक घडी के छठवे भाग मे ही मैं तुम्हे विजयी बना सकता हू और युधिष्ठिर के मस्तक पर राजमुकुट रखवा सकता हू।

ऐसे प्रसग पर आपसे सलाह ली जाती तो आप अर्जुन को क्या सलाह देते? शायद आप यही सलाह देते कि ऐसे नाजुक मौके पर रुक्म के आगे नम्र हो जाना और रुक्म के अभीष्ट शब्द कह देना ही उचित है। रुक्म को किसी भी प्रकार से अपने पक्ष मे रखना चाहिए। मगर अर्जुन वीर था। रुक्म ने उससे यह भी कह दिया था कि मेरा कहना न मानोगे तो अपनी मृत्यु समीप ही समझ लेना। मैं अभी तुम्हारे शत्रु के पक्ष मे मिल जाऊँगा। रुक्म की इस प्रकार की धमकी सुनकर भी अर्जुन ने परवाह नही की। अर्जुन ने यही कहा—अगर आपकी इच्छा विरुद्ध पक्ष मे जाने की है तो प्रसन्नता के साथ जा सकते हैं मैं आपकी इच्छा के विरुद्ध आपको रोकना नही चाहता। लेकिन आपके सामने इस प्रकार की दीनता नही दिखला सकता। आप कौरव-पक्ष मे सम्मिलित होने की सोचते हैं, मगर दुर्योधन आपसे अधिक वुद्धिमान् है। वह आपके चाहे

दृढता है, तो चाहे जैसा कठिन अवसर आवे या कैसा भी लोभ सामने आवे, आपको धर्म का परित्याग नही करना चाहिए। कहावत है—

सत मत छोड़ो सूरमा, लक्ष्मी चौगुनी होय।
सुख दुख रेखा कर्म की, टार सके नहि कोय॥

चिट्ठी पर लिखा जाने वाला साढे चौहत्तर का अंक यह सूचना देता है कि सत्य का परित्याग मत करो। सात का अक कहता है कि मेरी (सत्य की) रक्षा करो और चार का अक प्रगट करता है कि चाहे लक्ष्मी चौगुनी होती हो, फिर भी सत्य मत छोड़ो। दो लकीरें यह बतलाती हैं कि सुख और दुःख कर्म से मिलते हैं। सत्य को त्याग देने से दुःख मिटकर सुख नही बन जायेगा। अतएव किसी भी दशा मे सत्य मत जाने दो किन्तु प्रत्येक परिस्थिति मे धर्म की ही रक्षा करो। उदयपुर का तो मुद्रालेख ही यह है—

जो दृढ़ राखे धर्म को तेहि राखे करतार

अर्जुन ने सेना सहित रुक्म को जाने दिया पर अपना धर्म नही जाने दिया। उसने वास्तविकता के विरुद्ध यह नही कहा कि मैं भयभीत हूं। वह क्षत्रिय था। उसके मन मे दृढता थी। इस कारण उसने सत्य की रक्षा की। क्षत्रिय सत्य की रक्षा करता है और सत्य के प्रति उसके मन मे दृढ आस्था होती है। तो क्या आप श्रावकों को सत्य की रक्षा नही करनी चाहिए? श्रावक सत्य का आग्रही होना चाहिए। सचाई और मानसिक दृढता से ही सत्कर्म सिद्ध होते हैं। सत्य सरलता चाहता है। अतएव सरलता के साथ सत्य का पालन करो। ऐसा करने से सब कठि-

दृढता है, तो चाहे जैसा कठिन अवसर आवे या कैसा भी लोभ सामने आवे, आपको धर्म का परित्याग नही करना चाहिए। कहावत है—

सत मत छोड़ो सूरमा, लक्ष्मी चौगुनी होय।
सुख दुख रेखा कर्म की, टार सके नहिं कोय॥

चिट्ठी पर लिखा जाने वाला साढे चौहत्तर का अंक यह सूचना देता है कि सत्य का परित्याग मत करो। सात का अक कहता है कि मेरी (सत्य की) रक्षा करो और चार का अक प्रगट करता है कि चाहे लक्ष्मी चौगुनी होती हो, फिर भी सत्य मत छोड़ो। दो लकीरें यह बतलाती हैं कि सुख और दु:ख कर्म से मिलते हैं। सत्य को त्याग देने से दुःख मिटकर सुख नही बन जायेगा। अतएव किसी भी दशा मे सत्य मत जाने दो किन्तु प्रत्येक परिस्थिति मे धर्म की ही रक्षा करो। उदयपुर का तो मुद्रालेख ही यह है—

जो दृढ़ राखे धर्म को तेहि राखे करतार

अर्जुन ने सेना सहित रुक्म को जाने दिया पर अपना धर्म नही जाने दिया। उसने वास्तविकता के विरुद्ध यह नही कहा कि मैं भयभीत हूं। वह क्षत्रिय था। उसके मन मे दृढता थी। इस कारण उसने सत्य की रक्षा की। क्षत्रिय सत्य की रक्षा करता है और सत्य के प्रति उसके मन मे दृढ आस्था होती है। तो क्या आप श्रावकों को सत्य की रक्षा नही करनी चाहिए? श्रावक सत्य का आग्रही होना चाहिए। सचाई और मानसिक दृढता से ही सत्कर्म सिद्ध होते हैं। सत्य सरलता चाहता है। अतएव सरलता के साथ सत्य का पालन करो। ऐसा करने से सब कठि-

है तब तक तो वह आत्मा कहलाता है, लेकिन शरीर से मुक्त होने पर आत्मा और परमात्मा मे किसी प्रकार की विषमता नही रहती। जब तक शरीर के प्रति ममता है तब तक आत्मा परमात्मा से दूर है। इसी ममता के कारण आत्मा अनादिकाल से दु.ख भोगता आ रहा है और जब तक ममता रहेगी, दुःख भोगता ही रहेगा। इस प्रकार शरीर के प्रति जो ममता है वही सब गड़बड़ मचाये है। जिस समय पूर्णरूप से ममता हट जायेगी, आत्मा और परमात्मा के बीच कोई पर्दा नही रहेगा, किसी प्रकार की विषमता शेष नही रहेगी। अतएव ममता को मारने की आवश्यकता है। इसका आशय यह न समझा जाये कि शस्त्र से या विष से आत्महत्या करली जाये और इस प्रकार शरीर त्याग दिया जाये। ऐसा करने से लाभ के बदले हानि ही होगी। विषभक्षण करके शरीर का पूर्णरूप से त्याग नही किया जा सकता। मेरे कथन का आशय यह है कि शरीर के प्रति आत्मीयता का भाव हटा दिया जाये, इसे पर-पदार्थ माना जाये, इसके सुख-दुःख को ही आत्मा का सुख-दु ख ना समझा जाये, बल्कि समष्टि से सुख-दु ख को एकाकार कर लिया जाये—जगत् की शान्ति में अपनी शान्ति मानी जाये, संसार के दु.ख को अपने दुःख के रूप मे ग्रहण किया जाये। जो पुरुष व्यक्तित्व को भूलकर समष्टि का ध्यान रखता है और शरीर से ममत्व नही करता है, वह शरीर मे रहता हुआ भी परमात्मा से दूर नही है। व्यक्तित्व की भावना हट जाने पर और समष्टि की भावना आ जाने पर शरीर के रहते हुए भी शरीर पर ममत्व नही रहता।

है तब तक तो वह आत्मा कहलाता है, लेकिन शरीर से मुक्त होने पर आत्मा और परमात्मा मे किसी प्रकार की विषमता नही रहती। जब तक शरीर के प्रति ममता है तब तक आत्मा परमात्मा से दूर है। इसी ममता के कारण आत्मा अनादिकाल से दु.ख भोगता आ रहा है और जब तक ममता रहेगी, दुःख भोगता ही रहेगा। इस प्रकार शरीर के प्रति जो ममता है वही सब गड़वड़ मचाये है। जिस समय पूर्णरूप से ममता हट जायेगी, आत्मा और परमात्मा के बीच कोई पर्दा नही रहेगा, किसी प्रकार की विषमता शेप नही रहेगी। अतएव ममता को मारने की आवश्यकता है। इसका आशय यह न समझा जाये कि शस्त्र से या विप से आत्महत्या करली जाये और इस प्रकार शरीर त्याग दिया जाये। ऐसा करने से लाभ के बदले हानि ही होगी। विपभक्षण करके शरीर का पूर्णरूप से त्याग नही किया जा सकता। मेरे कथन का आशय यह है कि शरीर के प्रति आत्मीयता का भाव हटा दिया जाये, इसे पर-पदार्थ माना जाये, इसके सुख-दुःख को ही आत्मा का सुख-दु ख ना समझा जाये, बल्कि समष्टि से सुख-दु ख को एकाकार कर लिया जाये–जगत् की शान्ति में अपनी शान्ति मानी जाये, संसार के दु.ख को अपने दुःख के रूप मे ग्रहण किया जाये! जो पुरुप व्यक्तित्व को भूलकर समष्टि का ध्यान रखता है और शरीर से ममत्व नही करता है, वह शरीर मे रहता हुआ भी परमात्मा से दूर नही है। व्यक्तित्व की भावना हट जाने पर और समष्टि की भावना आ जाने पर शरीर के रहते हुए भा शरीर पर ममत्व नही रहता।

६ : व्यष्टि और समष्टि

आज म्हारा सभव जिनजी का हित चित से गुण गास्यां राज।

यह भगवान् संभवनाथ की प्रार्थना है। इस प्रार्थना मे भक्त ने भगवान् से जो आशा बाँधी है, वह आशा सिर्फ उस अकेले भक्त का नही है वरन् सारे जगत् की है।

प्रश्न हो सकता है कि इस आशा को समस्त जगत् की आशा कहने का आधार क्या है ? प्रार्थना करने वाले कवि ने क्या सारे ससार से पूछकर प्रार्थना की है ? इस प्रश्न का उत्तर यह है कि यहाँ जगत् के समस्त जीव तो विद्यमान नही हैं, कही सब एकत्र किये भी नही जा सकते, लेकिन यहाँ जो सघ उपस्थित है, उसकी आन्तरिक आकाक्षा को पहिचानकर हम जान सकते हैं कि प्रार्थनाकार कवि को सारे जगत् का प्रतिनिधित्व करने का अधिकार है या नही ? और कवि ने जो आशा प्रकट की है वह उपस्थित सघ की भी आशा है या नही ?

कोई भी व्यक्ति जब प्रार्थना मे पूर्णरूप से सलग्न हो जाता है, तब उसमें से वैयक्तिक भावना निकल जाती है और उसका स्थान समष्टि-भावना ग्रहण कर लेती है। ऐसा होना अनिवार्य है। परमात्मा की प्रार्थना करते हुए भी अगर व्यक्तित्व की भावना न मिटी और समष्टि की भावना न

६ : व्यष्टि और समष्टि

आज म्हारा सभव जिनजी का हित चित से गुण गास्यां राज।

यह भगवान् संभवनाथ की प्रार्थना है। इस प्रार्थना मे भक्त ने भगवान् से जो आशा बाँधी है, वह आशा सिर्फ उस अकेले भक्त का नही है वरन् सारे जगत् को है।

प्रश्न हो सकता है कि इस आशा को समस्त जगत् की आशा कहने का आधार क्या है? प्रार्थना करने वाले कवि ने क्या सारे ससार से पूछकर प्रार्थना की है? इस प्रश्न का उत्तर यह है कि यहाँ जगत् के समस्त जीव तो विद्यमान नही हैं, कही सब एकत्र किये भी नही जा सकते, लेकिन यहाँ जो सघ उपस्थित है, उसकी आन्तरित आकाक्षा को पहिचानकर हम जान सकते हैं कि प्रार्थनाकार कवि को सारे जगत् का प्रतिनिधित्व करने का अधिकार है या नही? और कवि ने जो आशा प्रकट की है वह उपस्थित सघ की भी आशा है या नही?

कोई भी व्यक्ति जब प्रार्थना मे पूर्णरूप से सलग्न हो जाता है, तब उसमें से वैयक्तिक भावना निकल जाती है और उसका स्थान समष्टि-भावना ग्रहण कर लेती है। ऐसा होना अनिवार्य है। परमात्मा की प्रार्थना करते हुए भी अगर व्यक्तित्व की भावना न मिटी और समष्टि की भावना न

है तब तक तो वह आत्मा कहलाता है, लेकिन शरीर से मुक्त होने पर आत्मा और परमात्मा मे किसी प्रकार की विषमता नही रहती। जब तक शरीर के प्रति ममता है तब तक आत्मा परमात्मा से दूर है। इसी ममता के कारण आत्मा अनादिकाल से दु.ख भोगता आ रहा है और जब तक ममता रहेगी, दुःख भोगता ही रहेगा। इस प्रकार शरीर के प्रति जो ममता है वही सब गड़बड़ मचाये है। जिस समय पूर्णरूप से ममता हट जायेगी, आत्मा और परमात्मा के बीच कोई पर्दा नही रहेगा, किसी प्रकार की विषमता शेष नही रहेगी। अतएव ममता को मारने की आवश्यकता है। इसका आशय यह न समझा जाये कि शस्त्र से या विप से आत्महत्या करली जाये और इस प्रकार शरीर त्याग दिया जाये। ऐसा करने से लाभ के बदले हानि ही होगी। विषभक्षण करके शरीर का पूर्णरूप से त्याग नही किया जा सकता। मेरे कथन का आशय यह है कि शरीर के प्रति आत्मीयता का भाव हटा दिया जाये, इसे पर-पदार्थ माना जाये, इसके सुख-दुःख को ही आत्मा का सुख-दु ख ना समझा जाये, बल्कि समष्टि से सुख-दु ख को एकाकार कर लिया जाये—जगत् की शान्ति में अपनी शान्ति मानी जाये, ससार के दु ख को अपने दु ख के रूप मे ग्रहण किया जाये! जो पुरुप व्यक्तित्व को भूलकर समष्टि का ध्यान रखता है और शरीर से ममत्व नही करता है, वह शरीर मे रहता हुआ भी परमात्मा से दूर नही है। व्यक्तित्व की भावना हट जाने पर और समष्टि की भावना आ जाने पर शरीर के रहते हुए भी शरीर पर ममत्व नही रहता।

है तब तक तो वह आत्मा कहलाता है, लेकिन शरीर से मुक्त होने पर आत्मा और परमात्मा मे किसी प्रकार की विषमता नही रहती। जब तक शरीर के प्रति ममता है तब तक आत्मा परमात्मा से दूर है। इसी ममता के कारण आत्मा अनादिकाल से दु.ख भोगता आ रहा है और जब तक ममता रहेगी, दुःख भोगता ही रहेगा। इस प्रकार शरीर के प्रति जो ममता है वही सब गड़बड़ मचाये है। जिस समय पूर्णरूप से ममता हट जायेगी, आत्मा और परमात्मा के बीच कोई पर्दा नही रहेगा, किसी प्रकार की विषमता शेष नही रहेगी। अतएव ममता को मारने की आवश्यकता है। इसका आशय यह न समझा जाये कि शस्त्र से या विप से आत्महत्या करली जाये और इस प्रकार शरीर त्याग दिया जाये। ऐसा करने से लाभ के वदले हानि ही होगी। विषभक्षण करके शरीर का पूर्णरूप से त्याग नही किया जा सकता। मेरे कथन का आशय यह है कि शरीर के प्रति आत्मीयता का भाव हटा दिया जाये, इसे पर-पदार्थ माना जाये, इसके सुख-दुःख को ही आत्मा का सुख-दु ख ना समझा जाये, वल्कि समष्टि से सुख-दु ख को एकाकार कर लिया जाये—जगत् की शान्ति में अपनी शान्ति मानी जाये, ससार के दु ख को अपने दु ख के रूप मे ग्रहण किया जाये ! जो पुरुप व्यक्तित्व को भूलकर समष्टि का ध्यान रखता है और शरीर से ममत्व नही करता है, वह शरीर मे रहता हुआ भी परमात्मा से दूर नही है। व्यक्तित्व की भावना हट जाने पर और समष्टि की भावना आ जाने पर शरीर के रहते हुए भी शरीर पर ममत्व नही रहता।

से जगत् का हित नही, अहित ही हुआ है। जगत् का हित तो समष्टिगत लाभ के लिए अपने व्यक्तित्व को भूल जाने वाले पुरुषो के द्वारा ही हुआ है। ऐसे ही पुरुषों ने महा-पुरुष का पद पाया है। ऐसे महापुरुषों की शरण में जाने के लिए ही कवि ने कहा है—

आज म्हारा संभव जिनजी रा,
हित चित से गुण गास्यां राज ॥ आज० ॥

भगवान् सभवनाथ ने अपने सुख-दुःख को भुलाकर जगत् के सुख के लिए ही व्यापार किया था। स्वार्थ-भावना रखकर व्यापार करना कोयले का व्यापार करने के समान है, जिससे हाथ तो काले हो जाते हैं मगर नफा ज्यादा नही होता और स्वार्थ-भाव त्याग कर समष्टि के लाभ के लिए व्यापार करना हीरे के व्यापार के समान है। यह व्यापार अनन्त हीरो के व्यापार से भी बढ़कर है। इस प्रशस्त व्यापार की प्रशसा करने के लिए शब्द पर्याप्त नही हैं।

अतएव मेरा सन्देश यही है कि अगर आप सभवनाथ भगवान् की शरण ग्रहण करना चाहते हैं तो व्यक्तिगत लाभ की भावना से ऊपर उठो। अपने स्वार्थ को न भूल सको तो कम से कम अपने स्वार्थ के साथ साथ सार्वजनिक हित का ही ध्यान रक्खो।

यहां जो सघ एकत्र हुआ है, वह कुछ काम करने के लिए या यो हा ? आपको यह नही भूलना चाहिए कि जो समाज जगत् के हित के लिए है, उस समाज में भाग न लेना, उस का सदस्य न बनना आत्म-हत्या के समान है।

से जगत् का हित नही, अहित ही हुआ है। जगत् का हित तो समष्टिगत लाभ के लिए अपने व्यक्तित्व को भूल जाने वाले पुरुषो के द्वारा ही हुआ है। ऐसे ही पुरुषों ने महा-पुरुष का पद पाया है। ऐसे महापुरुषों की शरण में जाने के लिए ही कवि ने कहा है—

आज म्हारा संभव जिनजी रा,
हित चित से गुण गास्यां राज ।। आज० ।।

भगवान् सभवनाथ ने अपने सुख-दु.ख को भुलाकर जगत् के सुख के लिए ही व्यापार किया था। स्वार्थ-भावना रखकर व्यापार करना कोयले का व्यापार करने के समान है, जिससे हाथ तो काले हो जाते हैं मगर नफा ज्यादा नही होता और स्वार्थ-भाव त्याग कर समष्टि के लाभ के लिए व्यापार करना हीरे के व्यापार के समान है। यह व्यापार अनन्त हीरो के व्यापार से भी बढ़कर है। इस प्रशस्त व्यापार की प्रशसा करने के लिए शब्द पर्याप्त नही हैं।

अतएव मेरा सन्देश यही है कि अगर आप सभवनाथ भगवान् की शरण ग्रहण करना चाहते हैं तो व्यक्तिगत लाभ की भावना से ऊपर उठो। अपने स्वार्थ को न भूल सको तो कम से कम अपने स्वार्थ के साथ साथ सार्वजनिक हित का ही ध्यान रक्खो।

यहां जो सघ एकत्र हुआ है, वह कुछ काम करने के लिए या यो हा ? आपको यह नही भूलना चाहिए कि जो समाज जगत् के हित के लिए है, उस समाज में भाग न लेना, उस का सदस्य न वनना आत्म-हत्या के समान है।

यह शरीर कुरुक्षेत्र है। इस कुरुक्षेत्र को भी प्रयत्न द्वारा धर्मक्षेत्र बनाया जा सकता है। काम, क्रोध, मोह, मत्सर आदि का वास होने के कारण शरीर कुरुक्षेत्र बना हुआ है। जब इन विकारो का अन्त हो जायेगा और उनके स्थान पर अहिंसा आदि सद्‌गुण आ जाएंगे तो यह शरीर कुरुक्षेत्र से धर्मक्षेत्र बन जायेगा। शरीर जब धर्मक्षेत्र बन जाता है तभी आत्मा का कल्याण होता है, अन्यथा नही।

मैं बार-बार यह बात आपको सुनाता हूं और आप बार-बार सुनते है। मगर सुन लेने मात्र से आत्मा की भलाई नही हो सकती। धर्म की जिस बात का आप श्रवण करते हैं, उसे अपनी शक्ति के अनुसार अमल मे लाइए। यह अपूर्व अवसर जो आपको मिला है सो सुन लेने भर को नही है। यह कार्य करने का अवसर है। कार्य करके दिखलाओ। लोग सभाएं करते है, अधिवेशन किया करते हैं, सो इसी उद्देश्य से कि कोई जनहितकारी मार्ग निकले। लेकिन इस प्रकार की सभा देखकर ही रह जाना ठीक है या उसमे सम्मिलित होकर नियमों का पालन करना उचित है? जो सभा—सोसाइटी कुछ व्यक्तियो के स्वार्थ के लिए न हो किन्तु जगत् का हित करने के लिए हो वही सच्ची सभा-सोसाइटी है, अन्यथा उसे स्वार्थियो का गुट ही कहा जा सकता है। इसी प्रकार वही समाज समाज है जो समष्टि के हित को अपना लक्ष्य बनाता है। सबका हित सामने रखकर कार्य करने पर सभी कार्य सभव हैं।

व्यक्तिगत स्वार्थ को किस प्रकार भूल जाना चाहिए

यह शरीर कुरुक्षेत्र है। इस कुरुक्षेत्र को भी प्रयत्न द्वारा धर्मक्षेत्र बनाया जा सकता है। काम, क्रोध, मोह, मत्सर आदि का वास होने के कारण शरीर कुरुक्षेत्र बना हुआ है। जब इन विकारो का अन्त हो जायेगा और उनके स्थान पर अहिंसा आदि सद्गुण आ जाएगे तो यह शरीर कुरुक्षेत्र से धर्मक्षेत्र बन जायेगा। शरीर जब धर्मक्षेत्र बन जाता है तभी आत्मा का कल्याण होता है, अन्यथा नही।

मैं बार-बार यह बात आपको सुनाता हूं और आप बार-बार सुनते है। मगर सुन लेने मात्र से आत्मा की भलाई नही हो सकती। धर्म की जिस बात का आप श्रवण करते हैं, उसे अपनी शक्ति के अनुसार अमल मे लाइए। यह अपूर्व अवसर जो आपको मिला है सो सुन लेने भर को नही है। यह कार्य करने का अवसर है। कार्य करके दिखलाओ। लोग सभाएं करते है, अधिवेशन किया करते हैं, सो इसी उद्देश्य से कि कोई जनहितकारी मार्ग निकले। लेकिन इस प्रकार की सभा देखकर ही रह जाना ठीक है या उसमे सम्मिलित होकर नियमों का पालन करना उचित है? जो सभा–सोसाइटी कुछ व्यक्तियो के स्वार्थ के लिए न हो किन्तु जगत् का हित करने के लिए हो वही सच्ची सभा-सोसाइटी है, अन्यथा उसे स्वार्थियो का गुट ही कहा जा सकता है। इसी प्रकार वही समाज समाज है जो समष्टि के हित को अपना लक्ष्य बनाता है। सबका हित सामने रखकर कार्य करने पर सभी कार्य सभव हैं।

व्यक्तिगत स्वार्थ को किस प्रकार भूल जाना चाहिए

करने से कुछ भी लाभ नहीं होगा। अपने घर मे कुछ है या नही इस बात का पता तो तभी लग सकता है जब ध्यानपूर्वक घर को टटोला जाय। जिस भारत के आगे यूरोप की प्रशसा की जाती है, उसके विषय में दुर्लभजी भाई के ×लडके, जो कई वार यूरोप जा आये हैं, कहते थे कि यूरोप मे तलाक तो होता ही था, अब परिमित समय के लिए विवाह भी हो सकता है। अर्थात् दो-चार वर्ष के लिए भी विवाह हो सकता है। इस नियत अवधि के पश्चात् पति और पत्नी दोनो स्वतत्र हैं। वे चाहें तो किसी दूसरे के साथ विवाह कर सकते है। यह उस स्वर्ग का हाल है जिस पर ललचाकर भारत की निन्दा की जाती है। क्या यह पद्धति आर्यदेश के लिए घृणास्पद नही है!

खेद है कि आज अनेक भारतवासी विदेशो की चाल-ढाल पर ललचाकर भारत के शत्रु बन रहे हैं—मातृभूमि के विरोधी हो रहे हैं। यद्यपि प्रगट मे कोई अपनी मातृ-भूमि का शत्रु नही बनना चाहता, लेकिन कार्य ऐसे किए जाते हैं। उदाहरणार्थ—जहा पैदा हुए हैं वहा का खाना-पीना आदि पसद न करके दूसरे देश का खाना पीना पसद करना। यह मातृभूमि से शत्रुता करना नही तो क्या है? माता का बनाया भोजन पसद न आना और वेश्या का बनाया पसद करना क्या माता के प्रति द्रोह करना नही है? ऐसा व्यक्ति मातृद्रोही ही कहा जा सकता है। इसी प्रकार जिसे भारत का रहन सहन, खान-पान और पोशाक पसंद नही है किन्तु विदेशी रहन-सहन खान-पान और

×जयपुर निवासी श्री विनयचन्द भाई जौहरी

करने से कुछ भी लाभ नहीं होगा। अपने घर मे कुछ है या नही इस बात का पता तो तभी लग सकता है जब ध्यानपूर्वक घर को टटोला जाय। जिस भारत के आगे यूरोप की प्रशसा की जाती है, उसके विषय में दुर्लभजी भाई के ×लडके, जो कई बार यूरोप जा आये हैं, कहते थे कि यूरोप मे तलाक तो होता ही था, अब परिमित समय के लिए विवाह भी हो सकता है। अर्थात् दो-चार वर्ष के लिए भी विवाह हो सकता है। इस नियत अवधि के पश्चात् पति और पत्नी दोनो स्वतत्र हैं। वे चाहें तो किसी दूसरे के साथ विवाह कर सकते है। यह उस स्वर्ग का हाल है जिस पर ललचाकर भारत की निन्दा की जाती है। क्या यह पद्धति आर्यदेश के लिए घृणास्पद नही है!

खेद है कि आज अनेक भारतवासी विदेशो की चाल-ढाल पर ललचाकर भारत के शत्रु बन रहे हैं—मातृभूमि के विरोधी हो रहे हैं। यद्यपि प्रगट मे कोई अपनी मातृ-भूमि का शत्रु नही बनना चाहता, लेकिन कार्य ऐसे किए जाते हैं। उदाहरणार्थ—जहा पैदा हुए हैं वहा का खाना-पीना आदि पसद न करके दूसरे देश का खाना पीना पसद करना। यह मातृभूमि से शत्रुता करना नही तो क्या है? माता का बनाया भोजन पसद न आना और वेश्या का बनाया पसद करना क्या माता के प्रति द्रोह करना नही है? ऐसा व्यक्ति मातृद्रोही ही कहा जा सकता है। इसी प्रकार जिसे भारत का रहन सहन, खान-पान और पोशाक पसंद नही है किन्तु विदेशी रहन-सहन खान-पान और

×जयपुर निवासी श्री विनयचन्द भाई जौहरी

भी कहा—दुर्योधन के भीषण अत्याचारो और अन्यायों के बावजूद भी मैं यही चाहता हू कि भरतवश सुरक्षित रहे। उसे किसी प्रकार क्षति न पहुचे। लेकिन दुर्योधन हमारा राज्य हमारे मागने पर भी नही लौटाता और हमे दवाता है। हम आपके पास आये है। आप ही हमे मार्ग सुझाइए। हमे अब क्या करना चाहिए? आप हमे जो आदेश देंगे, उसे हम शिरोधार्य करेंगे, यह कहने की तो आवश्यकता ही नही है।

इस प्रकार युधिष्ठिर ने कृष्ण पर भार डाल दिया। भीम और द्रौपदी ने भी अपने उग्र विचार कृष्ण के सामने प्रकट किये। सब की बात सुनकर कृष्ण ने अर्जुन से पूछा—तुम क्यो चुप हो? तुम भी अपने विचार प्रकट करो।

अर्जुन ने नम्रता के साथ कहा—जब मैं आपका शिष्य बन गया हू, मैंने आपको हाथ जोड़ लिये है तो आपसे भिन्न कहा रहा? मुझसे कुछ जानने या पूछने की आवश्यकता ही क्या रह गई है? मैं अपना सर्वस्व आपको सौंप चुका हू। मेरा सिर्फ एक ही कर्त्तव्य है—आपके आदेश को स्वीकार करना। ऐसा करने मे चाहे सर्वस्व जाता हो या प्राण देने पडते हो।

कृष्ण यह तो ठीक है, मगर तुम्हारे विचार जाने विन संधि कराने जाऊ और वहा तुम्हारे विचारो के विरुद्ध कोई कार्य हो जाये तो ठीक नहीं होगा। अतएव मैं तुम्हारे विचार जान लेना चाहता हू।

अर्जुन—सूर्य के सामने दीपक की क्या विसात है? फिर भी सूर्य की पूजा करने वाले लोग सूर्य को अपने घर

भी कहा—दुर्योधन के भीषण अत्याचारो और अन्यायों के बावजूद भी मैं यही चाहता हू कि भरतवश सुरक्षित रहे। उसे किसी प्रकार क्षति न पहुचे। लेकिन दुर्योधन हमारा राज्य हमारे मागने पर भी नही लौटाता और हमे दवाता है। हम आपके पास आये है। आप ही हमे मार्ग सुझाइए। हमे अब क्या करना चाहिए ? आप हमे जो आदेश देगे, उसे हम शिरोधार्य करेंगे, यह कहने की तो आवश्यकता ही नही है।

इस प्रकार युधिष्ठिर ने कृष्ण पर भार डाल दिया। भीम और द्रौपदी ने भी अपने उग्र विचार कृष्ण के सामने प्रकट किये। सब की बात सुनकर कृष्ण ने अर्जुन से पूछा—तुम क्यो चुप हो ? तुम भी अपने विचार प्रकट करो।

अर्जुन ने नम्रता के साथ कहा— जब मैं आपका शिष्य बन गया हू, मैंने आपको हाथ जोड़ लिये है तो आपसे भिन्न कहा रहा ? मुझसे कुछ जानने या पूछने की आवश्यकता ही क्या रह गई है ? मैं अपना सर्वस्व आपको सौंप चुका हू। मेरा सिर्फ एक ही कर्त्तव्य है—आपके आदेश को स्वीकार करना। ऐसा करने मे चाहे सर्वस्व जाता हो या प्राण देने पडते हो।

कृष्ण यह तो ठीक है, मगर तुम्हारे विचार जाने बिन सधि कराने जाऊ और वहा तुम्हारे विचारो के विरुद्ध कोई कार्य हो जाये तो ठीक नहीं होगा। अतएव मैं तुम्हारे विचार जान लेना चाहता हू।

अर्जुन—सूर्य के सामने दीपक की क्या बिसात है ? फिर भी सूर्य की पूजा करने वाले लोग सूर्य को अपने घर

और विनाश ही करता है, लेकिन वास्तव में भावी प्रजा के लिए निर्णय करने के अधिकारी हम कैसे हो सकते हैं? अपने स्वार्थ के लिए भावी प्रजा को सकट मे डाल देना राजनीतिक बुद्धिमत्ता नही है। अतएव मैं युद्ध का ही प्रस्ताव उपस्थित करने के लिए नही कहता। मेरा कथन सिर्फ यही है कि हमारा हक हर हालत में हमे मिलना चाहिए। आप जिस विधि से उचित समझें, हमारा हक दिलावें।

कृष्ण—यह तो मैं समझ गया। लेकिन दुर्योधन के हाथ मे सत्ता है। मुझे विश्वास नही होता कि वह राज्य का लोभ छोड़ देगा। ऐसी दशा मे तुम मुझे किस मार्ग का अवलम्बन करने के लिए परामर्श देते हो?

अर्जुन–आपका विचार यथार्थ है। वास्तव में सत्ता मनुष्य को गिरा देती है। यद्यपि सत्ता दूसरों की सेवा के लिए होनी चाहिए, मगर सत्ता प्राप्त होने पर मनुष्य मे अहंभाव आ जाता है और इस कारण सत्ताधीश घोर अनर्थ भी कर डालता है। दुर्योधन के हाथ मे इस समय सत्ता है। अगर वह अपनी सत्ता का दुरुपयोग न करता तो हमें दखल देने की कोई आवश्यकता नही थी। लेकिन वह सत्ता का दुरुपयोग करता है—सत्ता के बल से हमें दवाना चाहता है, अतएव हमे प्राण देकर भी अपने अधिकारो की रक्षा के लिए तत्पर रहना होगा।

कृष्ण— यह तो ठीक है। मगर मैं जा रहा हूं। अगर भीष्म और द्रोण को कोई सदेश कहना हो तो कहो।

अर्जुन—आपके द्वारा ही अगर उन्हे सदेश न भेजूंगा

और विनाश ही करता है, लेकिन वास्तव में भावी प्रजा के लिए निर्णय करने के अधिकारी हम कैसे हो सकते हैं? अपने स्वार्थ के लिए भावी प्रजा को सकट मे डाल देना राजनीतिक बुद्धिमत्ता नही है। अतएव मैं युद्ध का ही प्रस्ताव उपस्थित करने के लिए नही कहता। मेरा कथन सिर्फ यही है कि हमारा हक हर हालत में हमे मिलना चाहिए। आप जिस विधि से उचित समझें, हमारा हक दिलावें।

कृष्ण—यह तो मैं समझ गया। लेकिन दुर्योधन के हाथ मे सत्ता है। मुझे विश्वास नही होता कि वह राज्य का लोभ छोड़ देगा। ऐसी दशा मे तुम मुझे किस मार्ग का अवलम्बन करने के लिए परामर्श देते हो?

अर्जुन–आपका विचार यथार्थ है। वास्तव में सत्ता मनुष्य को गिरा देती है। यद्यपि सत्ता दूसरों की सेवा के लिए होनी चाहिए, मगर सत्ता प्राप्त होने पर मनुष्य मे अहभाव आ जाता है और इस कारण सत्ताधीश घोर अनर्थ भी कर डालता है। दुर्योधन के हाथ मे इस समय सत्ता है। अगर वह अपनी सत्ता का दुरुपयोग न करता तो हमें दखल देने की कोई आवश्यकता नही थी। लेकिन वह सत्ता का दुरुपयोग करता है—सत्ता के बल से हमें दबाना चाहता है, अतएव हमे प्राण देकर भी अपने अधिकारो की रक्षा के लिए तत्पर रहना होगा।

कृष्ण— यह तो ठीक है। मगर मैं जा रहा हूं। अगर भीष्म और द्रोण को कोई सदेश कहना हो तो कहो।

अर्जुन—आपके द्वारा ही अगर उन्हे सदेश न भेजूंगा

कृष्ण से यह कह चुकने के पश्चात् अर्जुन ने युधिष्ठिर से पूछा—आपका क्या विचार है ?

युधिष्ठिर - मैंने आपकी शरण में रहकर आपका उपदेश सुना है मै जानता हू कि बड़े-बड़े शास्त्रज्ञ भी आपके विचार सुनकर नम्र हो जाते हैं और अपना पक्ष छोड़ देते है । आपके विचार हृदय को इस प्रकार प्रभावित कर देते है कि उनके विरुद्ध कोई कुछ भी नही कह सकता । अतएव आप जो कुछ करेंगे, मुझे स्वीकार होगा ।

युधिष्ठिर ने भीम, नकुल और सहदेव से पूछा—तुम्हारा क्या विचार है ? सभी ने कृष्ण पर अपना विश्वास प्रकट किया और उनके निर्णय को स्वीकार करने की प्रतिज्ञा की ।

अन्त मे द्रौपदी की वारी आई । उससे पूछा गया—देवी, तुम्हारा क्या विचार है ? इस प्रश्न के उत्तर मे द्रौपदी ने अपने केश हाथ मे लेकर कृष्ण से जो कुछ कहा था, वह कथन इतना उग्र था कि उससे मुर्दा हृदय में भी एक वार जान आ सकती थी । उसने ऐसी उग्रता भरी वात कह कर भी अन्त मे यही कहा—आप मेरे केशों का विचार अवश्य रखें । यो तो मैं आपके साथ ही हूं । आप जो कुछ करेंगे, हमारे हित मे ही होगा और वह सव मुझे स्वीकार होगा ।

इस प्रकार द्रौपदी सहित सभी पाण्डवो ने कृष्णजी पर अपना पूर्ण विश्वास प्रकट किया । परिणाम इसका यह हुआ कि महाभारत-सग्राम मे पाण्डवों को ही विजय प्राप्त हुई । यद्यपि युद्ध मे कृष्ण निश्शस्त्र थे फिर भी कृष्ण पर ही सव ने विश्वास प्रकट किया । इसी विश्वास की वदौलत उन्होंने विजय पाई थी । इस घटना के प्रकाश मे हमें

कृष्ण से यह कह चुकने के पश्चात् अर्जुन ने युधिष्ठिर से पूछा—आपका क्या विचार है ?

युधिष्ठिर - मैंने आपकी शरण में रहकर आपका उपदेश सुना है मैं जानता हू कि बड़े-बड़े शास्त्रज्ञ भी आपके विचार सुनकर नम्र हो जाते हैं और अपना पक्ष छोड़ देते है। आपके विचार हृदय को इस प्रकार प्रभावित कर देते है कि उनके विरुद्ध कोई कुछ भी नही कह सकता। अतएव आप जो कुछ करेंगे, मुझे स्वीकार होगा।

युधिष्ठिर ने भीम, नकुल और सहदेव से पूछा–तुम्हारा क्या विचार है ? सभी ने कृष्ण पर अपना विश्वास प्रकट किया और उनके निर्णय को स्वीकार करने की प्रतिज्ञा की।

अन्त मे द्रौपदी की वारी आई। उससे पूछा गया—देवी, तुम्हारा क्या विचार है ? इस प्रश्न के उत्तर मे द्रौपदी ने अपने केश हाथ मे लेकर कृष्ण से जो कुछ कहा था, वह कथन इतना उग्र था कि उससे मुर्दा हृदय में भी एक वार जान आ सकती थी। उसने ऐसी उग्रता भरी बात कह कर भी अन्त मे यही कहा—आप मेरे केशों का विचार अवश्य रखें। यो तो मैं आपके साथ ही हूं। आप जो कुछ करेंगे, हमारे हित मे ही होगा और वह सब मुझे स्वीकार होगा।

इस प्रकार द्रौपदी सहित सभी पाण्डवो ने कृष्णजी पर अपना पूर्ण विश्वास प्रकट किया। परिणाम इसका यह हुआ कि महाभारत-सग्राम मे पाण्डवों को ही विजय प्राप्त हुई। यद्यपि युद्ध मे कृष्ण निश्शस्त्र थे, फिर भी कृष्ण पर ही सब ने विश्वास प्रकट किया। इसी विश्वास की वदौलत उन्होने विजय पाई थी। इस घटना के प्रकाश मे हमें

७ : जय-जय जगत्-शिरोमणि

मुझ पर महर करो चन्द्रप्रभो ! जगजीवन अन्तर्यामी ।

यह भगवान् चन्द्रप्रभ की प्रार्थना है । इस प्रार्थना मे आगे चलकर यह सरल बात कही है—

जय-जय जगत्-शिरोमणि ।

अर्थात्— हे जगत् के शिरोमणि ! तेरा जयजयकार हो ! यों तो यह सरल और साधारण सी बात है, परन्तु गभीरता के साथ विचार करने पर प्रतीत होता है कि इस सरल उक्ति मे भी अतीव गभीर रहस्य छिपा है ।

जगत् विचित्रताओ से भरा है और जो विचित्रताओ से भरा है वही जगत् कहलाता है । परमात्मा ऐसे जगत् का शिरोमणि है, यह सुनकर किसी के मन मे किसी प्रकार की भ्राति भी हो सकती है ! इस जगत् मे स्वर्ग भी है और नरक भी है । स्वर्ग कैसा है और नरक कैसा है, इन दोनो मे कसी विचिता है ? फिर भी जगत् मे दोनो का समावेश हो जाता है । जगत् के प्राणियो मे भी कोई पापात्मा है और कोई पुण्यात्मा है । कोई ऐसा सुखी जान पडता है कि स्वर्ग को भी नीचा दिखलाता है और कोई नारकीय वेदना भोगता हुआ घोर दु खी है । कोई ऐसे कार्य करते हैं कि स्वर्ग में रहने वाले भी नही कर सकते

७ : जय-जय जगत्-शिरोमणि

मुझ पर महर करो चन्द्रप्रभो ! जगजीवन अन्तर्यामी ।

यह भगवान् चन्द्रप्रभ की प्रार्थना है । इस प्रार्थना मे आगे चलकर यह सरल वात कही है—

जय-जय जगत्-शिरोमणि ।

अर्थात्— हे जगत् के शिरोमणि ! तेरा जयजयकार हो ! यों तो यह सरल और साधारण सी वात है, परन्तु गभीरता के साथ विचार करने पर प्रतीत होता है कि इस सरल उक्ति मे भी अतीव गभीर रहस्य छिपा है ।

जगत् विचित्रताओ से भरा है और जो विचित्रताओ से भरा है वही जगत् कहलाता है । परमात्मा ऐसे जगत् का शिरोमणि है, यह सुनकर किसी के मन मे किसी प्रकार की भ्राति भी हो सकती है ! इस जगत् मे स्वर्ग भी है और नरक भी है । स्वर्ग कैसा है और नरक कैसा है, इन दोनो मे कसी विचिता है ? फिर भी जगत् मे दोनो का समावेश हो जाता है । जगत् के प्राणियो मे भी कोई पापात्मा है और कोई पुण्यात्मा है। कोई ऐसा सुखी जान पडता है कि स्वर्ग को भी नीचा दिखलाता है और कोई नारकीय वेदना भोगता हुआ घोर दुःखी है । कोई ऐसे कार्य करते हैं कि स्वर्ग में रहने वाले भी नही कर सकते

प्राप्त कर सकते हो, दुखी को परमात्मा का पैर मानकर परमात्मा को प्राप्त कर सकने के अनेकों उदाहरण हैं। मेघकुमार को दुखी शशक ने ही मेघकुमार बनाया था और राजा मेघरथ को दुखी कपोत ने ही शान्तिनाथ बनाया था। इस तरह आत्मा को ऊँची स्थिति मे चढाने वाले दुखी जीव ही हैं। दुखी या रोगी ही डाक्टर को डाक्टर बनाते हैं। दुनिया मे रोगी न होते तो डाक्टर कहाँ से आते? और उन्हे चिकित्सक कौन कहता? अतएव दुखी जीव को देखकर उन पर करुणा लाना ऊँची स्थिति पर चढने का मार्ग है। इसी मार्ग पर चलने से परमात्मा की प्राप्ति होती है। यह मार्ग दयाधर्म भी कहलाता है। दया-धर्म का मार्ग ही आत्मा को ऊँची स्थिति पर चढाने वाला और परमात्मा से भेंट कराने वाला है।

ससार दुखो से व्याप्त है। इस मे शारीरिक मानसिक और आध्यात्मिक दुःख बहुत भरे हुए है। इस विविध प्रकार के दुखो मे भी आध्यात्मिक दुःख सब से बढकर है। इस दुख ने बड-बडे लोगो को भी घेर रखा है। इस आध्यात्मिक दुख को मिटाने के लिए ही दयाधर्म का मार्ग बतलाया गया है।

अगर दयाधर्म का पालन करने से आध्यात्मिक दुख की समाप्ति हो जाती है तो साधु इस मार्ग को क्यो नही अपनाते हैं? साधु के पात्र मे रोटी मौजूद हो और सामने कोई भूखा आदमी आया हो तो साधु अपने पात्र की रोटी भूखे को नही देते। ऐसी स्थिति मे यह कैसे कहा जा सकता है कि साधु लोग दयाधर्म का पालन करते हैं?

प्राप्त कर सकते हो, दुखी को परमात्मा का पैर मानकर परमात्मा को प्राप्त कर सकने के अनेकों उदाहरण हैं। मेघकुमार को दुखी शशक ने ही मेघकुमार बनाया था और राजा मेघरथ को दुखी कपोत ने ही शान्तिनाथ बनाया था। इस तरह आत्मा को ऊँची स्थिति मे चढाने वाले दुखी जीव ही हैं। दुखी या रोगी ही डाक्टर को डाक्टर बनाते हैं। दुनिया मे रोगी न होते तो डाक्टर कहाँ से आते ? और उन्हे चिकित्सक कौन कहता ? अतएव दुखी जीव को देखकर उन पर करुणा लाना ऊँची स्थिति पर चढने का मार्ग है। इसी मार्ग पर चलने से परमात्मा की प्राप्ति होती है। यह मार्ग दयाधर्म भी कहलाता है। दया-धर्म का मार्ग ही आत्मा को ऊँची स्थिति पर चढाने वाला और परमात्मा से भेंट कराने वाला है।

ससार दुखो से व्याप्त है। इस मे शारीरिक मानसिक और आध्यात्मिक दुःख बहुत भरे हुए है। इस विविध प्रकार के दुखो मे भी आध्यात्मिक दुःख सब से बढकर है। इस दुख ने बड-बडे लोगो को भी घेर रखा है। इस आध्यात्मिक दुख को मिटाने के लिए ही दयाधर्म का मार्ग बतलाया गया है।

अगर दयाधर्म का पालन करने से आध्यात्मिक दुख की समाप्ति हो जाती है तो साधु इस मार्ग को क्यो नही अपनाते हैं ? साधु के पात्र मे रोटी मौजूद हो और सामने कोई भूखा आदमी आया हो तो साधु अपने पात्र की रोटी भूखे को नही देते। ऐसी स्थिति मे यह कैसे कहा जा सकता है कि साधु लोग दयाधर्म का पालन करते हैं ?

वह दयाधर्म का पालन भी करता है, फिर भी वह विश्वासघात करके या अप्रामाणिकता का सेवन करके अपना भोजन दूसरो को नही देता। अलवत्ता साधु दूसरे प्रकार के दयाधर्म का पालन करता है। इस सम्बन्ध मे कहा है—

जहा पुन्नस्स कत्थइ तहा तुच्छस्स कत्थइ;
जहा तुच्छस्स कत्थइ तहा पुन्नस्स कत्थइ।

अर्थात्—साधु जिस प्रकार सम्पन्न पुरुष को धर्मोपदेश सुनाता है, उसी प्रकार दरिद्र को सुनाता है और जिस प्रकार दरिद्र को सुनाता है उसी प्रकार सम्पन्न को सुनाता है। साधु को सधन निर्धन मे किसी प्रकार का भेद नही रखना चाहिए। उसे दोनो के प्रति समभावी होना चाहिए। जो धनवान् और निर्धन मे भेद करता है वह साधु नही है। किसी ने यथार्थ कहा है—

धनवंत को आदर करे, निर्धन को करे दूर।
ते साधु जाणो मती, रोटी तणा मजूर॥

इस प्रकार साधु धर्म का उपदेश देने में किसी के साथ पक्षपात न करे। ऐसा करने पर ही वह साधु कहला सकता है।

कहा जा सकता है कि अगर बिना किसी भेदभाव के साथ धर्मोपदेश देता है तो शास्त्र मे राजा आदि को सम्बोधन करके सब बातें क्यो कही गई हैं? इसका उत्तर यह है कि दवा देने वाला पहले उसी को दवा देता है जो ज्यादा रोगी हो। इसी के अनुसार साधु जिसके विषय मे सोचता है कि इस पर ससार के काम का बोझा ज्यादा है और इसको आध्यात्मिक कष्ट ज्यादा है, उसी को सम्बोधन करके

वह दयाधर्म का पालन भी करता है, फिर भी वह विश्वासघात करके या अप्रामाणिकता का सेवन करके अपना भोजन दूसरो को नही देता। अलवत्ता साधु दूसरे प्रकार के दयाधम का पालन करता है। इस सम्बन्ध मे कहा है—

जहा पुन्नस्स कत्थइ तहा तुच्छस्स कत्थइ;
जहा तुच्छस्स कत्थइ तहा पुन्नस्स कत्थइ।

अर्थात्—साधु जिस प्रकार सम्पन्न पुरुष को धर्मोपदेश सुनाता है, उसी प्रकार दारिद्र को सुनाता है और जिस प्रकार दरिद्र का सुनाता है उसी प्रकार सम्पन्न को सुनाता है। साधु को सधन निर्धन मे किसी प्रकार का भेद नही रखना चाहिए। उसे दोनो के प्रति समभावी होना चाहिए। जो धनवान् और निर्धन मे भेद करता है वह साधु नही है। किसी ने यथार्थ कहा है—

धनवत को आदर कर, निर्धन को करे दूर।
ते साधु जाणो मती, रोटी तणा मजूर॥

इस प्रकार साधु धर्म का उपदेश देने में किसी के साथ पक्षपात न करे। ऐसा करने पर हो वह साधु कहला सकता है।

कहा जा सकता है कि अगर विना किसी भेदभाव के साध धर्मोपदेश देता है तो शास्त्र मे राजा आदि को सम्बोधन करके सब बातें क्यो कही गई हैं? इसका उत्तर यह है कि दवा देने वाला पहले उसी को दवा देता है जो ज्यादा रोगी हो। इसी के अनुसार साधु जिसके विषय मे सोचता है कि इस पर ससार के काम का बोझा ज्यादा है और इसको आध्यात्मिक कष्ट ज्यादा है, उसी को सम्बोधन करके

ज्यादा बोझ देखते हैं और समझाते है कि उसके सुधरने से बहुतो का सुधार हो जायेगा, उसको सम्बोधन करके बात कहते हैं। तात्पर्य यह है कि साधु समान भाव से आध्यात्मिक दुःख मिटाने रूप दया करते हैं। यह दया करने मे वे किसी प्रकार का पक्षपात या भेदभाव नही करते। साधु पुरुषो क हृदय से समान रूप से सभी पर दया का अमृत बरसता है।

इस प्रकार परमात्मा से मिलने का मार्ग दु खी जीवो पर करुणा करना है। कदाचित् आप सब पर दया न कर सके, सब दुखियो की सहायता न कर सके, तब भी जो दु खी आपके सामने आये, जिसका दु ख दूर करना आपके सामर्थ्य के बाहर न हो, उसका ही दु ख मिटाओ !, उन पर तो करुणा करो। ससार का कोई भी दवाखाना ससार के समस्त रोगियो को दवा नही पहुचा सकता, फिर भी जिस दवाखाने मे किसी प्रकार का भेदभाव नही किया जाता और आने वाले प्रत्येक-प्रत्येक रोगी को दवा दी जाती है, वह सार्वजनिक दवाखाना ही कहलाता है। इसी प्रकार जो पुरुप अपने हृदय मे दया का मार्ग खुला रखता है जिसके दिल मे प्रत्येक दुखिया को स्थान है, वह दयालु ही कहा जाता है। उसके विपय मे यही कहा जायेगा कि वह परमात्मा को प्राप्त करने का प्रयत्न कर रहा है।

आत्मा, परमात्मा से तभी भेंट सकता है जब वह अपने दुर्गुण आप देखने लगता है और सन्मान पाने की इच्छा का परित्याग कर देता है। जो सन्मान पाने की इच्छा का परित्याग कर देगा, वह अपने पाप दूसरे के समक्ष

ज्यादा बोझ देखते हैं और समझाते है कि उसके सुधरने से बहुतो का सुधार हो जायेगा, उसको सम्बोधन करके बात कहते हैं। तात्पर्य यह है कि साधु समान भाव से आध्यात्मिक दुःख मिटाने रूप दया करते हैं। यह दया करने मे वे किसी प्रकार का पक्षपात या भेदभाव नही करते। साधु पुरुषो क हृदय से समान रूप से सभी पर दया का अमृत वरसता है।

इस प्रकार परमात्मा से मिलने का मार्ग दु खी जीवो पर करुणा करना है। कदाचित् आप सव पर दया न कर सके, सव दुखियो की सहायता न कर सकं, तव भी जो दु खी आपके सामने आये, जिसका दु ख दूर करना आपके सामर्थ्य के बाहर न हो, उसका ही दु ख मिटाओ!, उन पर तो करुणा करो। ससार का कोई भी दवाखाना ससार के समस्त रोगियो को दवा नही पहुचा सकता, फिर भी जिस दवाखाने मे किसो प्रकार का भेदभाव नही किया जाता और आने वाले प्रत्येक-प्रत्येक रोगी को दवा दी जाती है, वह सार्वजनिक दवाखाना ही कहलाता है। इसी प्रकार जो पुरुप अपने हृदय मे दया का मार्ग खुला रखता है जिसके दिल मे प्रत्येक दुखिया को स्थान है, वह दयालु ही कहा जाता है। उसके विपय मे यही कहा जायेगा कि वह परमात्मा को प्राप्त करने का प्रयत्न कर रहा है।

आत्मा, परमात्मा से तभी भेंट सकता है जब वह अपने दुर्गुण आप देखने लगता है और सन्मान पाने की इच्छा का परित्याग कर देता है। जो सन्मान पाने की इच्छा का परित्याग कर देगा, वह अपने पाप दूसरे के समक्ष

उसे साफ कर दे तो क्या आप उस आदमी पर नाराज होगे ? इसी प्रकार जिस निन्दा से आत्मा का दुःख मिटता है, उस निन्दा को सुनकर आप बुरा क्यो मानते हैं ? पापो को स्वय प्रकट कर देने से जो निन्दा होती है, उससे आत्मा के दुःखों का विनाश होता है। भक्त तुकाराम का कहना है कि निन्दक का घर मेरे समीप ही हो तो अच्छा है। वह जब-तब मेरी निन्दा करेगा और उसके द्वारा की हुई निन्दा से मुझे बहुत कुछ जानने को मिलेगा। इससे मेरी अवनति रुकेगी और उन्नति होगी। मेरी आत्मा की अशुद्धि हटेगी और शुद्धि की वृद्धि होगी।

किसी कवि ने राजा से कहा—'आप के शत्रु चिरंजीव हों!' यह विचित्र आशीर्वाद सुनकर राजा नाराज हो गया। दूसरे सुनने वालो को भी इस आशीर्वाद से बुरा लगा। मगर उनमें एक पकी हुई बुद्धि का समझदार आदमी था। उसने राजा से कहा— आप यह आशीर्वाद सुनकर नाराज क्यो होते हैं ? आपको तो प्रसन्न होना चाहिए।

राजा झझलाकर कहने लगा – यह तो शत्रुओ के लिए आशीर्वाद दे रहा है! तब उस समझदार आदमी ने कहा— ऐसा आशीर्वाद देकर कवि ने आपका हित ही चाहा है। जब आपके शत्रु जीवित रहेगे तो आप में बल, बुद्धि, पराक्रम और सावधानी जागृत रहेगी। आप सावधानी रखने के कारण ही राजा हैं। राजा को सदा सावधान रहना चाहिए, सावधानी तभी रह सकती है जब शत्रु का भय हो। शत्रु के होने पर ही होशियारी आती है इस

उसे साफ कर दे तो क्या आप उस आदमी पर नाराज होगे ? इसी प्रकार जिस निन्दा से आत्मा का दुःख मिटता है, उस निन्दा को सुनकर आप बुरा क्यो मानते हैं ? पापो को स्वय प्रकट कर देने से जो निन्दा होती है, उससे आत्मा के दुःखों का विनाश होता है। भक्त तुकाराम का कहना है कि निन्दक का घर मेरे समीप ही हो तो अच्छा है। वह जब-तब मेरी निन्दा करेगा और उसके द्वारा की हुई निन्दा से मुझे बहुत कुछ जानने को मिलेगा। इससे मेरी अवनति रुकेगी और उन्नति होगी। मेरी आत्मा की अशुद्धि हटेगी और शुद्धि की वृद्धि होगी।

किसी कवि ने राजा से कहा—'आप के शत्रु चिरंजीव हों।' यह विचित्र आशीर्वाद सुनकर राजा नाराज हो गया। दूसरे सुनने वालो को भी इस आशीर्वाद से बुरा लगा। मगर उनमें एक पकी हुई बुद्धि का समझदार आदमी था। उसने राजा से कहा— आप यह आशीर्वाद सुनकर नाराज क्यो होते हैं ? आपको तो प्रसन्न होना चाहिए।

राजा झझलाकर कहने लगा – यह तो शत्रुओ के लिए आशीर्वाद दे रहा है ! तब उस समझदार आदमी ने कहा— ऐसा आशीर्वाद देकर कवि ने आपका हित ही चाहा है। जब आपके शत्रु जीवित रहेगे तो आप में बल, बुद्धि, पराक्रम और सावधानी जागृत रहेगी। आप सावधानी रखने के कारण हो राजा हैं। राजा को सदा सावधान रहना चाहिए, सावधानी तभी रह सकती है जब शत्रु का भय हो। शत्रु के होने पर ही होशियारी आती है इस

मतलब यह है कि स्वय गढ्ढा करने से अपुरस्कार भाव उदित होगा। लोगो मे निन्दा होगी। उस निन्दा को सुनकर जो समभावपूर्वक सहन कर लेगा, वह अनन्त कर्मों का घात करेगा।

भगवान् को 'नमो अरिहताण' कहकर नमस्कार किया जाता है। अर्थात् उसे नमस्कार है जिसने शत्रुओ का हनन किया है। जैसे भगवान् ने अनन्त शत्रुओ का घात किया था, उसी प्रकार आप भी अनन्त शत्रुओ का घात करो। आप भी काम, क्रोध आदि शत्रुओ को जीतो। ऐसा करने से आप भी वैसे ही बन जाएगे।

सुदर्शन सेठ के सामने अर्जुन माली मुद्गर लेकर आया था। उस समय सुदर्शन ने यही कहा था कि—'प्रभो ! अब तक मैंने निरपराधी को ही मारने का त्याग किया था—अपराधी को मारने का त्याग नही किया था। लेकिन अब अपराधी को भी मारने का त्याग करता हू। नाथ ! मेरी प्रार्थना है, मुझे ऐसी शक्ति दो कि मेरे अन्त.करण में अर्जुन के प्रति लेशमात्र भी द्वेष उत्पन्न न हो। इस प्रकार सुदर्शन ने अर्जुन के प्रति रचमात्र भी द्वेष उत्पन्न नही होने दिया और न वैरभाव ही रखा। फल यह हुआ कि अर्जुन की शक्तिया स्वत. कुण्ठित हो गई वह स्वय नम्र हो गया। अगर आपके अन्त करण मे इसी प्रकार की भावना उत्पन्न हो गई तो निश्चित है कि आपके शत्रु भी आपके पैरो पर पडे विना नही रहेगे।

कृष्ण और युधिष्ठिर मे भी शत्रुओ के प्रति क्षमा रखने की ही वात हुई थी। युधिष्ठिर अहिंसा और क्षमा

मतलब यह है कि स्वय गढ्ढा करने से अपुरस्कार भाव उदित होगा । लोगो मे निन्दा होगी । उस निन्दा को सुनकर जो समभावपूर्वक सहन कर लेगा, वह अनन्त कर्मों का घात करेगा ।

भगवान् को 'नमो अरिहताण' कहकर नमस्कार किया जाता है । अर्थात् उसे नमस्कार है जिसने शत्रुओ का हनन किया है । जैसे भगवान् ने अनन्त शत्रुओ का घात किया था, उसी प्रकार आप भी अनन्त शत्रुओ का घात करो । आप भी काम, क्रोध आदि शत्रुओ को जीतो । ऐसा करने से आप भी वैसे ही बन जाएगे ।

सुदर्शन सेठ के सामने अर्जुन माली मुद्गर लेकर आया था। उस समय सुदर्शन ने यही कहा था कि—'प्रभो ! अब तक मैंने निरपराधी को ही मारने का त्याग किया था—अपराधी को मारने का त्याग नही किया था । लेकिन अब अपराधी को भी मारने का त्याग करता हू । नाथ ! मेरी प्रार्थना है, मुझे ऐसी शक्ति दो कि मेरे अन्त.करण में अर्जुन के प्रति लेशमात्र भी द्वेष उत्पन्न न हो । इस प्रकार सुदर्शन ने अर्जुन के प्रति रचमात्र भी द्वेष उत्पन्न नही होने दिया और न वैरभाव ही रखा । फल यह हुआ कि अर्जुन की शक्तिया स्वत. कुण्ठित हो गई वह स्वय नम्र हो गया । अगर आपके अन्त करण मे इसी प्रकार की भावना उत्पन्न हो गई तो निश्चित है कि आपके शत्रु भी आपके पैरो पर पडे बिना नही रहेगे ।

कृष्ण और युधिष्ठिर मे भी शत्रुओ के प्रति क्षमा रखने की ही बात हुई थी । युधिष्ठिर अहिंसा और क्षमा

ऐसा उत्पन्न होता रहता है जो अपने को इस मार्ग का मुसाफिर बनाता है और जगत् मे अपनी असाधारण विजय की महत्ता स्थापित कर जाता है। यह मार्ग महान् मंगलकारी है। विश्व के लिए आशीर्वाद है। कल्याण की कामना है तो परमात्मा के इस पथ पर चलो।

ऐसा उत्पन्न होता रहता है जो अपने को इस मार्ग का मुसाफिर बनाता है और जगत् मे अपनी असाधारण विजय की महत्ता स्थापित कर जाता है। यह मार्ग महान् मंगलकारी है। विश्व के लिए आशीर्वाद है। कल्याण की कामना है तो परमात्मा के इस पथ पर चलो।

विघ्नो अन्तरायो को दूर कर देना चाहिए । जब तक ऐसा नही किया जायेगा अर्थात् पर्दे को नही हटाया जायेगा तब तक परमात्मा से भेंट कैसे हो सकती है ?' अगर कोई इस पर्दे को हटाने का प्रयत्न नही करता तो यही कहा जायेगा कि वह परमात्मा से भेंट नही करना चाहता ।

ससार मे सब से बडी भूल जो हो रही है, वह यही है कि जो वस्तुये परमात्मा से भेट करने मे विघ्न रूप हैं, उन्ही वस्तुओ को लोग हितकारी समझते हैं । इस भूल के कारण आत्मा और परमात्मा के बीच की दूरी बढती चली जाती है । अगर आप इस दूरी को खत्म करना चाहते हैं तो इस पद्धति को पलट दीजिये और सच्ची वस्तु प्राप्त कीजिये ।

भगवान् सुबुद्धिनाथ का 'सुबुद्धिनाथ' नाम केवली पद प्राप्त करने से पहले का है—बाद का यह नाम नही है । केवली पद प्राप्त करने के बाद तो उनके अनन्त नाम हो गये है । हम लोग अपनी क्षुद्र बुद्धि का सदुपयोग नही करते वरन् दुरुपयोग करते हैं । अपनी बुद्धि के सहारे ऐसा तक-वितर्क करते हैं, जिसका करना उचित नही है । इस प्रकार हम भगवान् को प्राप्त करने के मार्ग मे काटे बिखेर लेते है । भगवान् सुबुद्धिनाथ को शरण मे जाने पर बुद्धि का दुरुपयोग मिट जायेगा और सुबुद्धि प्रकट होगी । अतएव अपनी बुद्धि को सुबुद्धि बनाने के लिए भगवान् की शरण मे जाना उचित है ।

कहा जा सकता है कि यह तो सभी चाहते हैं कि हमारी दुर्बुद्धि मिट जाये और सुबुद्धि का प्रकाश हो, लेकिन

विघ्नो अन्तरायो को दूर कर देना चाहिए । जब तक ऐसा नही किया जायेगा अर्थात् पर्दे को नही हटाया जायेगा तब तक परमात्मा से भेंट कैसे हो सकती है ? अगर कोई इस पर्दे को हटाने का प्रयत्न नही करता तो यही कहा जायेगा कि वह परमात्मा से भेंट नही करना चाहता ।

ससार मे सब से बडी भूल जो हो रही है, वह यही है कि जो वस्तुये परमात्मा से भेट करने मे विघ्न रूप हैं, उन्ही वस्तुओ को लोग हितकारी समझते हैं । इस भूल के कारण आत्मा और परमात्मा के बीच की दूरी बढती चली जाती है । अगर आप इस दूरी को खत्म करना चाहते हैं तो इस पद्धति को पलट दीजिये और सच्ची वस्तु प्राप्त कीजिये ।

भगवान् सुबुद्धिनाथ का 'सुबुद्धिनाथ' नाम केवली पद प्राप्त करने से पहले का है—बाद का यह नाम नही है । केवली पद प्राप्त करने के बाद तो उनके अनन्त नाम हो गये है । हम लोग अपनी क्षुद्र बुद्धि का सदुपयोग नही करते वरन् दुरुपयोग करते हैं । अपनी बुद्धि के सहारे ऐसा तक-वितर्क करते हैं, जिसका करना उचित नही है । इस प्रकार हम भगवान् को प्राप्त करने के मार्ग मे काटे बिखेर लेते है । भगवान् सुबुद्धिनाथ की शरण मे जाने पर बुद्धि का दुरुपयोग मिट जायेगा और सुबुद्धि प्रकट होगी । अत-एव अपनी बुद्धि को सुबुद्धि बनाने के लिए भगवान् की शरण मे जाना उचित है ।

कहा जा सकता है कि यह तो सभी चाहते हैं कि हमारी दुर्बुद्धि मिट जाये और सुबुद्धि का प्रकाश हो, लेकिन

पर व्यक्ति को स्वातन्त्र्य का विचार करना चाहिए। व्यक्ति-स्वातन्त्र्य के बिना धर्म नही टिक सकता। कोई भी धर्म यह नही कहता कि परस्पर लडो और एक दूसरे को दुःख पहुचाओ। फिर भी धर्म के नाम पर जो दूसरों को दुःख देता है वह धर्म को नही जानता है। इस प्रकार बुद्धि मे विचित्रता आ रही है। इसे मिटाने के लिए सुबुद्धिनाथ की शरण मे जाना चाहिए। भगवान् सुबुद्धिनाथ की शरण मे जाने से बुद्धि की विचित्रता मिट जायेगी।

लोग मुझे अहिंसाधर्म का प्रचारक कहते हैं पर वास्तव मे मैं अहिंसाधर्म का सेवक हूं। अहिंसाधर्म के प्रचार की योग्यता मुझ मे अभी नही आई है। मेरे भीतर जो विकार मौजूद है, उन्हे मैं जानता हू। कोई कह सकता है कि अगर मुझ में विकार मौजूद है तो मैं अहिंसाधर्म का उपदेश क्यो देता हूं? इसका उत्तर यही है कि ऐसा करने मे भी मै अपनी आत्मा का हित देखता हू। अपने विकारो को जीतने का यह भी एक मार्ग है। मैं इतने श्रोताओ के समक्ष जो कुछ कहता हू—श्रोताओ को जिस कर्त्तव्य की ओर प्रेरित करता हू, मेरा कर्त्तव्य हो जाता है कि मैं स्वय उसका पालन करू। अगर मैं ऐसा न करू, मैं जो कहता हू उसमे अपने आपको न लगाऊँ और विपरीत ही व्यवहार करू तो यह उलटे मार्ग पर चलना होगा। अत-एव मैं भगवान् की शरण मे जाकर प्रार्थना करता हू कि मेरी बुद्धि मे किसी समय विकृति न आवे और मैं जैसा दूसरो के सामने बोलता हूं उसी के अनुसार स्वय भी व्यव-हार करू। प्रत्येक मनुष्य का यही कर्त्तव्य है कि वह अपनी बुद्धि मे किसी भी क्षण विकृति न आने दे और भगवान्

पर व्यक्ति को स्वातन्त्र्य का विचार करना चाहिए। व्यक्ति-स्वातन्त्र्य के बिना धर्म नही टिक सकता। कोई भी धर्म यह नही कहता कि परस्पर लडो और एक दूसरे को दुःख पहुचाओ। फिर भी धर्म के नाम पर जो दूसरों को दुख देता है वह धर्म को नही जानता है। इस प्रकार बुद्धि मे विचित्रता आ रही है। इसे मिटाने के लिए सुबुद्धिनाथ की शरण मे जाना चाहिए। भगवान् सुबुद्धिनाथ की शरण मे जाने से बुद्धि की विचित्रता मिट जायेगी।

लोग मुझे अहिंसाधर्म का प्रचारक कहते हैं पर वास्तव मे मैं अहिंसाधर्म का सेवक हूं। अहिंसाधर्म के प्रचार की योग्यता मुझ मे अभी नही आई है। मेरे भीतर जो विकार मौजूद है, उन्हे मैं जानता हू। कोई कह सकता है कि अगर मुझ में विकार मौजूद है तो मैं अहिंसाधर्म का उपदेश क्यो देता हूं? इसका उत्तर यही है कि ऐसा करने मे भी मै अपनी आत्मा का हित देखता हू। अपने विकारो को जीतने का यह भी एक मार्ग है। मैं इतने श्रोताओ के समक्ष जो कुछ कहता हू—श्रोताओ को जिस कर्त्तव्य की ओर प्रेरित करता हू, मेरा कर्त्तव्य हो जाता है कि मैं स्वय उसका पालन करू। अगर मैं ऐसा न करू, मैं जो कहता हू उसमे अपने आपको न लगाऊँ और विपरीत ही व्यवहार करू तो यह उलटे मार्ग पर चलना होगा। अतएव मैं भगवान् की शरण मे जाकर प्रार्थना करता हू कि मेरी बुद्धि मे किसी समय विकृति न आवे और मैं जैसा दूसरो के सामने बोलता हूं उसी के अनुसार स्वय भी व्यवहार करू। प्रत्येक मनुष्य का यही कर्त्तव्य है कि वह अपनी बुद्धि मे किसी भी क्षण विकृति न आने दे और भगवान्

सभा में भाषण देने में उन्हे कोई दिक्कत नही उठानी पडी, जैसी कि कई दूसरी रियासतो में उठानी पड़ती है। इससे पोरवदर मे गाधीजी के प्रभाव के विपय में बहुत कुछ जानकारी हो जाती है।

आज गांधीजी की जन्मतिथि है। साधु किसी की जन्मतिथि नही मनाते हैं, लेकिन आज मैं बतलाना चाहता हूं कि गाधीजी ने अहिंसा के प्रभाव को किस प्रकार प्रकट किया है? पंजावकेसरी लाला लाजपतराय का जन्म जैन परिवार मे हुआ था। उनके दादा या किसी दूसरे पूर्वज ने साधुमार्गी समाज मे ही दीक्षा भी ली थी। लेकिन लाला लाजपतराय को कोई ठीक तरह जैन सिद्धान्त समझाने वाला नही मिला। अतएव उनके विचारो मे परिवर्तन हो गया और वे आर्यसमाजी वन गये। मगर आर्यसमाज से भी उन्हे सतोष नही हुआ। वे कहने लगे—तलवार के वल के विना देश का कल्याण नहीं हो सकता। उन्होंने यह भी कहा कि जैनों और वौद्धो की अहिंसा ने देश को कायर वना दिया है। जब तक यह कायरता नही मिटेगी, देश का कल्याण नही होगा।

इस प्रकार लाजपतराय अहिंसा के विरोधी हो गये। जव गांधीजी ने अहिंसा का प्रचार आरभ किया तव उन्होंने गाधीजी को एक पत्र लिखा। उसमे उन्होंने लिखा कि देश पहले ही कायर वना हुआ है। आप अहिंसा का उपदेश देकर उसे इस समय और अधिक कायर क्यो वनाते हैं जब कि उसमे कुछ जागृति आई है। गाधीजी ने लालाजी के पत्र का उत्तर दिया और कहा जाता है कि लम्बे अर्से तक

सभा में भाषण देने में उन्हे कोई दिक्कत नही उठानी पडी, जैसी कि कई दूसरी रियासतो में उठानी पड़ती है । इससे पोरवदर मे गाधीजी के प्रभाव के विषय में बहुत कुछ जानकारी हो जाती है ।

आज गांधीजी की जन्मतिथि है । साधु किसी की जन्मतिथि नही मनाते हैं, लेकिन आज मैं बतलाना चाहता हूं कि गाधीजी ने अहिंसा के प्रभाव को किस प्रकार प्रकट किया है ? पंजाबकेसरी लाला लाजपतराय का जन्म जैन परिवार मे हुआ था । उनके दादा या किसी दूसरे पूर्वज ने साधुमार्गी समाज मे ही दीक्षा भी ली थी । लेकिन लाला लाजपतराय को कोई ठीक तरह जैन सिद्धान्त समझाने वाला नही मिला । अतएव उनके विचारो मे परिवर्तन हो गया और वे आर्यसमाजी बन गये । मगर आर्यसमाज से भी उन्हे सतोष नही हुआ । वे कहने लगे—तलवार के बल के बिना देश का कल्याण नही हो सकता । उन्होने यह भी कहा कि जैनों और बौद्धो की अहिंसा ने देश को कायर बना दिया है । जब तक यह कायरता नही मिटेगी, देश का कल्याण नही होगा ।

इस प्रकार लाजपतराय अहिंसा के विरोधी हो गये । जब गांधीजी ने अहिंसा का प्रचार आरभ किया तब उन्होने गाधीजी को एक पत्र लिखा । उसमे उन्होने लिखा कि देश पहले ही कायर बना हुआ है । आप अहिंसा का उपदेश देकर उसे इस समय और अधिक कायर क्यो बनाते हैं जब कि उसमे कुछ जागृति आई है । गाधीजी ने लालाजी के पत्र का उत्तर दिया और कहा जाता है कि लम्बे अर्से तक

प्राप्त है। भारत में ही नही, सम्पूर्ण संसार मे उनकी बडी प्रतिष्ठा है। उनके और गाधीजी के कतिपय विचारों में भले मतभेद रहे मगर गाधीजी के अहिंसा के गुण को वे भी मस्तक ही झुकाते है। इससे आप को यह सीखना चाहिये कि आप में आपस मे किसी प्रकार का मतभेद भले ही हो, पर अहिंसा के विषय मे तो किसी प्रकार का मतभेद नही होना चाहिए।

रवीन्द्रनाथ ठाकुर जब अमेरिका गये तब वहां के लोगो ने उनसे कहा—हम भारत के गाधी की बडी प्रशसा सुनते हैं। आपने तो उन्हे देखा होगा आप उनके सबध में अपने विचार प्रकट कीजिये। रवि बाबू ने कहा—मैंने गाधीजी को देखा तो है, मगर जिस रूप मे मैंने उन्हे देखा है, उसका मैं वर्णन नही कर सकता। गाधीजी की प्रशसा उनके शरीर के कारण नही है। शारीरिक दृष्टि से दुर्बल होने पर भी वे महान् हैं।

भूतवादी लोग सब करामात भूतो की ही मानते हैं। इस दृष्टि से जिसका शरीर महान् हो उसी को महान् होना चाहिए और जिसका शरीर दुर्बल हो, उसे तुच्छ होना चाहिए। मगर गाधीजी का उदाहरण भूतवादियो की मान्यता को गलत प्रमाणित करता है। रवीन्द्रनाथ ने कहा—गाधीजी शरीर से बहुत दुबल दिखाई देते हैं, मगर उनमें तीन बातें ऐसी हैं जिनके कारण वे महान् माने जाते हैं और वे बातें उनकी महत्ता को प्रकट करती हैं। पहली बात यह है कि उनमे निर्भयता है। मैं कवि सम्राट् कहलाता हू, फिर भी यदि कोई व्यक्ति छुरा लेकर मुझे मारने

प्राप्त है। भारत में ही नही, सम्पूर्ण संसार मे उनको बडी प्रतिष्ठा है। उनके और गाधीजी के कतिपय विचारों में भले मतभेद रहे मगर गाधीजी के अहिंसा के गुण को वे भी मस्तक ही झुकाते है। इससे आप को यह सीखना चाहिये कि आप में आपस मे किसी प्रकार का मतभेद भले ही हो, पर अहिंसा के विषय मे तो किसी प्रकार का मतभेद नही होना चाहिए।

रवीन्द्रनाथ ठाकुर जब अमेरिका गये तब वहां के लोगो ने उनसे कहा—हम भारत के गाधी की बडी प्रशसा सुनते हैं। आपने तो उन्हे देखा होगा आप उनके सबध में अपने विचार प्रकट कीजिये। रवि बाबू ने कहा—मैंने गाधीजी को देखा तो है, मगर जिस रूप मे मैंने उन्हे देखा है, उसका मैं वर्णन नही कर सकता। गाधीजी की प्रशसा उनके शरीर के कारण नही है। शारीरिक दृष्टि से दुर्बल होने पर भी वे महान् हैं।

भूतवादी लोग सब करामात भूतो की ही मानते हैं। इस दृष्टि से जिसका शरीर महान् हो उसी को महान् होना चाहिए और जिसका शरीर दुर्बल हो, उसे तुच्छ होना चाहिए। मगर गाधीजी का उदाहरण भूतवादियो की मान्यता को गलत प्रमाणित करता है। रवीन्द्रनाथ ने कहा—गाधीजी शरीर से बहुत दुबल दिखाई देते हैं, मगर उनमें तीन बातें ऐसी हैं जिनके कारण वे महान् माने जाते हैं और वे बाते उनकी महत्ता को प्रकट करती हैं। पहली बात यह है कि उनमे निर्भयता है। मैं कवि सम्राट् कहलाता हू, फिर भी यदि कोई व्यक्ति छुरा लेकर मुझे मारने

को बेहद प्रलोभन दिये गये थे मगर उसने सत्य का परित्याग नही किया था। गाधीजी मे सत्य के प्रति जो दृढता है, उसे देखते हुए प्राचीनकाल की इन घटनाओ को कैसे असत्य कहा जा सकता है? इस गये–गुजरे जमाने मे भी जब गाधीजी जैसे सत्यभक्त मौजूद है तो पूर्व समय मे कामदेव जैसे श्रावको के सत्य पर अटल रहने में कैसे शका की जा सकती है?

आगे कहते हुए कविसम्राट् बोले - 'गाधीजी में ऐसी प्रामाणिकता है कि उन्हे कितनी ही सम्पत्ति क्यो न दी जाये, उसे वे उसी काम मे लगाएँगे जिस काम के लिए वह दी गई होगी। वे उस सम्पत्ति मे से अपने लिए एक भी पैसा नही खर्चेंगे।'

एक ओर गाधीजी मे इतनी प्रामाणिकता है और दूसरी ओर क्या देखा जाता है? कई लोग अपने पास जमा धर्मादा खाते की रकम मे से कुछ देकर कीर्त्ति उपार्जन करते हैं। इतना ही नही, बहुत–से लोग तो धर्मादे की ही रकम हजम कर जाते हैं। ऐसे लोगो का क्या गाधीजी की प्रामाणिकता से शिक्षा नही लेनी चाहिए?

कविसम्राट् रवीन्द्रनाथ ने गाधीजी के सबध मे जो कुछ कहा, उसे सुनकर अमेरिका के बड़े-बड़े पादरियो ने कहा—'जब गाधी ऐसा है तो कहा जा सकता है कि ससार में सबसे बड़ा पुरुष महात्मा गाधी ही है।' इस प्रकार गाधीजी के गुणो से प्रभावित होकर लोगो ने स्वीकार किया कि गाधीजी ससार के सबसे बड़े पुरुष है।

रवि बाबू ने गाधीजी की कतिपय विशेषताओं का

को बेहद प्रलोभन दिये गये थे मगर उसने सत्य का परित्याग नही किया था। गाधीजी मे सत्य के प्रति जो दृढता है, उसे देखते हुए प्राचीनकाल की इन घटनाओ को कैसे असत्य कहा जा सकता है ? इस गये-गुजरे जमाने मे भी जब गाधीजी जैसे सत्यभक्त मौजूद है तो पूर्व समय मे कामदेव जैसे श्रावको के सत्य पर अटल रहने में कैसे शका की जा सकती है ?

आगे कहते हुए कविसम्राट् बोले -'गाधीजी में ऐसी प्रामाणिकता है कि उन्हे कितनी ही सम्पत्ति क्यो न दी जाये, उसे वे उसी काम मे लगाएँगे जिस काम के लिए वह दी गई होगी। वे उस सम्पत्ति मे से अपने लिए एक भी पैसा नही खर्चेंगे।'

एक ओर गाधीजी मे इतनी प्रामाणिकता है और दूसरी ओर क्या देखा जाता है ? कई लोग अपने पास जमा धर्मादा खाते की रकम मे से कुछ देकर कीर्त्ति उपार्जन करते हैं। इतना ही नही, बहुत-से लोग तो धर्मादे की ही रकम हजम कर जाते हैं। ऐसे लोगो का क्या गाधीजी की प्रामाणिकता से शिक्षा नही लेनी चाहिए ?

कविसम्राट् रवीन्द्रनाथ ने गाधीजी के सबध मे जो कुछ कहा, उसे सुनकर अमेरिका के बडे-बड़े पादरियो ने कहा—'जब गाधा ऐसा है तो कहा जा सकता है कि ससार में सबसे बड़ा पुरुष महात्मा गाधी ही है।' इस प्रकार गाधीजी के गुणो से प्रभावित होकर लोगो ने स्वीकार किया कि गाधीजी ससार के सबसे बड़े पुरुष है।

रवि बाबू ने गाधीजो की कतिपय विशेषताओं का

फल भोग रहा है, लेकिन हमें इसकी सेवा करनी चाहिए। इस प्रकार विचार करने से ही सेवाभावना कायम रहती है। शास्त्र का यही आदेश है कि स्वयमेव सेवा करने की भावना रखो। शास्त्र का तो यह आदेश है किन्तु आप लोगो को दूसरो की सेवा करना बहुत कठिन जान पडता है। गाधीजी जैसी महिमा आपको मिले तो आप फौरन उसे लेने के लिए तैयार हो जाएँगे, लेकिन गाधीजी की तरह सेवा करने के लिए कितने लोग तैयार हैं? गाधीजी का सेवाभाव देखकर उनके विरोधी का भी हृदय पलट गया और वह उनके व्यक्तित्व से प्रभावित हो गया।

जैनशास्त्र में क्षमा को सबसे बड़ा गुण कहा है। दस प्रकार के यतिधर्मो मे क्षमा को पहला स्थान दिया है। साथ ही क्षमा कैसी होती है और वह किस सीमा तक रखी जा सकती है, यह बतलाने के लिए गजसुकुमार मुनि का उदाहरण भी दिया गया है। कहा जा सकता है कि जरा-सा बिच्छू काटने का कष्ट सहना भी कठिन हो जाता है तो मस्तक पर जलने वाली आग के दुख को किस प्रकार सहन किया गया होगा? लेकिन आज क्षमा के जो उदाहरण सुने जाते हैं, उन पर से इस प्रकार का सदेह मिट जाता है और ऐसा सदेह रखने वालों को भी मानना पड़ता है कि जब इस समय भी ऐसी अपूर्व क्षमा करने वाले पुरुष मौजूद है तो प्राचीनकाल मे सिर पर जलने वाले अगारो से न घबराकर अगर गजसुकुमार मुनि ने क्षमा रखी तो कोई आश्चर्य की बात नही है।

गाधीजी मे क्षमावृत्ति कैसी है, इस सबध में एक

फल भोग रहा है, लेकिन हमें इसकी सेवा करनी चाहिए। इस प्रकार विचार करने से ही सेवाभावना कायम रहती है। शास्त्र का यही आदेश है कि स्वयमेव सेवा करने की भावना रखो। शास्त्र का तो यह आदेश है किन्तु आप लोगो को दूसरो की सेवा करना बहुत कठिन जान पडता है। गाधीजी जैसी महिमा आपको मिले तो आप फौरन उसे लेने के लिए तैयार हो जाएँगे, लेकिन गाधीजी की तरह सेवा करने के लिए कितने लोग तैयार हैं ? गाधीजी का सेवाभाव देखकर उनके विरोधी का भी हृदय पलट गया और वह उनके व्यक्तित्व से प्रभावित हो गया।

जैनशास्त्र में क्षमा को सबसे बड़ा गुण कहा है। दस प्रकार के यतिधर्मो मे क्षमा को पहला स्थान दिया है। साथ ही क्षमा कैसी होती है और वह किस सीमा तक रखी जा सकती है, यह बतलाने के लिए गजसुकुमार मुनि का उदाहरण भी दिया गया है। कहा जा सकता है कि जरा-सा बिच्छू काटने का कष्ट सहना भी कठिन हो जाता है तो मस्तक पर जलने वाली आग के दुख को किस प्रकार सहन किया गया होगा ? लेकिन आज क्षमा के जो उदाहरण सुने जाते हैं, उन पर से इस प्रकार का सदेह मिट जाता है और ऐसा सदेह रखने वालों को भी मानना पड़ता है, कि जब इस समय भी ऐसी अपूर्व क्षमा करने वाले पुरुष मौजूद है तो प्राचीनकाल मे सिर पर जलने वाले अगारो से न घबराकर अगर गजसुकुमार मुनि ने क्षमा रखी तो कोई आश्चर्य की बात नही है।

गाधीजी मे क्षमावृत्ति कैसी है, इस सबध में एक

और चर्बी लगे हुए वस्त्रो की अपेक्षा खादी में अधिक खर्च भले जान पड़ता हो, मगर आपको यह भी सोचना चाहिए कि खादी के निमित्त खर्च किया हुआ प्रत्येक पैसा देश के गरीब भाइयो के पास ही पहुचता है। इसके विपरीत मेचेस्टर के मलमल मे लगा हुआ पैसा विदेशो में जाता है और उससे गरीव देशवासियो की रोटी मारी जाती है। अगरेज लोग अपने देश की चीजो का बहुत ख्याल करते है और कई गुनी कीमत चुकाकर भी अपने ही देश की चीज खरीदते हैं। ऐसा न करना उन्हें देशद्रोह मालूम होता है। क्या स्वदेशी वस्तुओं की अपेक्षा करके विदेशी वस्तुए खरीद करके आप देशद्रोह के भागी नही होते ?

यह तो निश्चित है कि खादी के लिए जो ज्यादा पैसे देने पडते हैं वे गरीव देशवन्धुओ के पास पहुंचते हैं और मिल के वस्त्रो के पैसे विशेपत विदेशी पूजीपतियों के पल्ले पडते है। एक वार किसी ने वतलाया था कि मद्रास के राजगोपालाचार्य ने खादी के प्रयोग का एक कारखाना खोला था। उस कारखाने के द्वारा १५८ ग्रामों के गरीवो का दुष्काल के समय गुजारा चला। इस प्रकार छोटे-छोटे कार्यों द्वारा भी गरीवों की किस प्रकार सहायता की जा सकती है इस वात पर विचार करो और खादी तथा मिल के वस्त्रो में होने वाले आरभ-समारभ का भी विचार करो और देखो कि अल्पआरभ किसमें है और महारभ किसमें है ? तव आपको मिल के और खादी के वस्त्रो का अन्तर प्रतीत हो जायेगा। खादी पहिनने के कारण आज आपको कुछ असुविधा भी उठानी पड़ती हो तो भी परवाह मत करो। आखिर तो यह अल्पारभी ही परमात्मा

और चर्बी लगे हुए वस्त्रो की अपेक्षा खादी में अधिक खर्च भले जान पड़ता हो, मगर आपको यह भी सोचना चाहिए कि खादी के निमित्त खर्च किया हुआ प्रत्येक पैसा देश के गरीब भाइयो के पास ही पहुचता है। इसके विपरीत मेचेस्टर के मलमल मे लगा हुआ पैसा विदेशो में जाता है और उससे गरीव देशवासियो की रोटी मारी जाती है। अगरेज लोग अपने देश की चीजो का बहुत ख्याल करते है और कई गुनी कीमत चुकाकर भी अपने ही देश की चीज खरीदते हैं। ऐसा न करना उन्हें देशद्रोह मालूम होता है। क्या स्वदेशी वस्तुओं की अपेक्षा करके विदेशी वस्तुए खरीद करके आप देशद्रोह के भागी नही होते ?

यह तो निश्चित है कि खादी के लिए जो ज्यादा पैसे देने पडते हैं वे गरीव देशवन्धुओ के पास पहुंचते हैं और मिल के वस्त्रो के पैसे विशेषत विदेशी पू जीपतियों के पल्ले पडते है। एक वार किसी ने वतलाया था कि मद्रास के राजगोपालाचार्य ने खादी के प्रयोग का एक कारखाना खोला था। उस कारखाने के द्वारा १५८ ग्रामों के गरीवो का दुष्काल के समय गुजारा चला। इस प्रकार छोटे-छोटे कार्यों द्वारा भी गरीवों की किस प्रकार सहायता की जा सकती है इस वात पर विचार करो और खादी तथा मिल के वस्त्रो में होने वाले आरभ-समारभ का भी विचार करो और देखो कि अल्पआरभ किसमें है और महारभ किसमें है ? तव आपको मिल के और खादी के वस्त्रो का अन्तर प्रतीत हो जायेगा। खादी पहिनने के कारण आज आपको कुछ असुविधा भी उठानी पड़ती हो तो भी परवाह मत करो। आखिर तो यह अल्पारभी ही परमात्मा

गांधीजी उस पठान के पास पहुंचे । उनकी बातें सुनकर पठान का हृदय पलट गया । वह पश्चात्ताप करने लगा कि लोगो ने मुझे भ्रम में डाल दिया और इसी कारण मै भयानक अनर्थ कर बैठा ! इस प्रकार पश्चात्ताप करके वह गांधीजी के पैरो में गिर पडा और क्षमा मॉगने लगा।

अगर गाधीजी उस पठान पर मुकदमा चलाते तो पठान के हृदय मे वैसा परिवर्तन न होता जो उदारतापूर्ण क्षमाभाव प्रदर्शित करने के कारण हुआ ।

गाधीजी ने उस पठान पर भो मुकदमा नही चलाया, लेकिन लोग अपने सगे भाई पर भी मुकदमा चलाने से बाज नही आते ! क्या आप मे कोई ऐसा है जो अपने भाई पर अदालत मे मुकदमा चलाने का त्याग करने को तैयार हो ? जिन हाकिमो के सामने भाई-भाई के मुकदमे आते हैं, वे इस विचार से और अधिक शिक्षा ले सकते हैं कि ससार मे किस तरह की आग लग रही है ! यहां भाई भाई का दुश्मन बन जाता है !

गाधीजी की क्षमा के उदाहरण से यह समझा जा सकता है कि जब इस काल में भी इस तरह क्षमा करने वाले मौजूद हैं× तो भगवान् नेमिनाथ के समय मे गजसु-

---

× गाधीजी का जीवन ज्यो-ज्यो अग्रसर होता गया, उनकी क्षमाभावना बढती गई । अन्तिम दिनो वह इतनी बढ गई थी कि बम फेंक कर अपने प्राण लेने की चेष्टा करने वाले पुरुष को भी क्षमा कर दिया था और उसे दण्ड न देन के लिए सरकार से अपील की थी । गाधीजी को अवकाश मिलता तो निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि वे अपने हत्यारे को भी क्षमा कर देने को अपील करते ।

—सम्पादक

गांधीजी उस पठान के पास पहुंचे। उनकी बातें सुनकर पठान का हृदय पलट गया। वह पश्चात्ताप करने लगा कि लोगो ने मुझे भ्रम में डाल दिया और इसी कारण मै भयानक अनर्थ कर बैठा! इस प्रकार पश्चात्ताप करके वह गांधीजी के पैरो में गिर पडा और क्षमा माँगने लगा।

अगर गाधीजी उस पठान पर मुकदमा चलाते तो पठान के हृदय मे वैसा परिवर्तन न होता जो उदारतापूर्ण क्षमाभाव प्रदर्शित करने के कारण हुआ।

गाधीजी ने उस पठान पर भी मुकदमा नही चलाया, लेकिन लोग अपने सगे भाई पर भी मुकदमा चलाने से बाज नही आते! क्या आप मे कोई ऐसा है जो अपने भाई पर अदालत मे मुकदमा चलाने का त्याग करने को तैयार हो? जिन हाकिमो के सामने भाई-भाई के मुकदमे आते हैं, वे इस विचार से और अधिक शिक्षा ले सकते हैं कि ससार मे किस तरह की आग लग रही है! यहां भाई भाई का दुश्मन बन जाता है!

गाधीजी की क्षमा के उदाहरण से यह समझा जा सकता है कि जब इस काल में भी इस तरह क्षमा करने वाले मौजूद हैं× तो भगवान् नेमिनाथ के समय मे गजसु-

---

×गाधीजी का जीवन ज्यो-ज्यो अग्रसर होता गया, उनकी क्षमाभावना बढती गई। अन्तिम दिनो वह इतनी बढ गई थी कि बम फेंक कर अपने प्राण लेने की चेष्टा करने वाले पुरुष को भी क्षमा कर दिया था और उसे दण्ड न देन के लिए सरकार से अपील की थी। गाधीजी को अवकाश मिलता तो निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि वे अपने हत्यारे को भी क्षमा कर देने को अपील करते।

—सम्पादक

और चर्बी लगे हुए वस्त्रो की अपेक्षा खादी में अधिक खर्च भले जान पड़ता हो, मगर आपको यह भी सोचना चाहिए कि खादी के निमित्त खर्च किया हुआ प्रत्येक पैसा देश के गरीब भाइयो के पास ही पहुचता है। इसके विपरीत मेंचेस्टर के मलमल मे लगा हुआ पैसा विदेशों मे जाता है और उससे गरीब देशवासियो की रोटी मारी जाती है। अगरेज लोग अपने देश की चीजों का बहुत ख्याल करते हैं और कई गुनी कीमत चुकाकर भी अपने ही देश की चीज खरीदते हैं। ऐसा न करना उन्हे देशद्रोह मालूम होता है। क्या स्वदेशी वस्तुओ की अपेक्षा करके विदेशी वस्तुए खरीद करके आप देशद्रोह के भागी नही होते ?

यह तो निश्चित है कि खादी के लिए जो ज्यादा पैसे देने पडते हैं वे गरीब देशबन्धुओं के पास पहुंचते हैं और मिल के वस्त्रो के पैसे विशेषत: विदेशी पूजीपतियो के पल्ले पड़ते हैं। एक बार किसी ने बतलाया था कि मद्रास के राजगोपालाचार्य ने खादी के प्रयोग का एक कारखाना खोला था। उस कारखाने के द्वारा १५८ ग्रामों के गरीबो का दुष्काल के समय गुजारा चला। इस प्रकार छोटे-छोटे कार्यों द्वारा भी गरीबो की किस प्रकार सहायता की जा सकती है इस बात पर विचार करो और खादी तथा मिल के वस्त्रो में होने वाले आरभ-समारभ का भी विचार करो और देखो कि अल्पआरभ किसमे है और महारभ किसमें है ? तब आपको मिल के और खादी के वस्त्रो का अन्तर प्रतीत हो जायेगा। खादी पहिनने के कारण आज आपको कुछ असुविधा भी उठानी पड़ती हो तो भी परवाह मत करो। आखिर तो यह अल्पारभी ही परमात्मा

और चर्बी लगे हुए वस्त्रो की अपेक्षा खादी में अधिक खर्च भले जान पड़ता हो, मगर आपको यह भी सोचना चाहिए कि खादी के निमित्त खर्च किया हुआ प्रत्येक पैसा देश के गरीब भाइयो के पास ही पहुचता है। इसके विपरीत मेचेस्टर के मलमल मे लगा हुआ पैसा विदेशों मे जाता है और उससे गरीब देशवासियो की रोटी मारी जाती है। अगरेज लोग अपने देश की चीजों का बहुत ख्याल करते हैं और कई गुनी कीमत चुकाकर भी अपने ही देश की चीज खरीदते हैं। ऐसा न करना उन्हे देशद्रोह मालूम होता है। क्या स्वदेशी वस्तुओ की अपेक्षा करके विदेशी वस्तुए खरीद करके आप देशद्रोह के भागी नही होते ?

यह तो निश्चित है कि खादी के लिए जो ज्यादा पैसे देने पडते हैं वे गरीब देशबन्धुओं के पास पहुंचते हैं और मिल के वस्त्रो के पैसे विशेपतः विदेशी पूजीपतियो के पल्ले पड़ते हैं। एक बार किसी ने बतलाया था कि मद्रास के राजगोपालाचार्य ने खादी के प्रयोग का एक कारखाना खोला था। उस कारखाने के द्वारा १५८ ग्रामों के गरीबो का दुष्काल के समय गुजारा चला। इस प्रकार छोटे-छोटे कार्यों द्वारा भी गरीबो की किस प्रकार सहायता की जा सकती है इस बात पर विचार करो और खादी तथा मिल के वस्त्रो में होने वाले आरभ-समारभ का भी विचार करो और देखो कि अल्पआरभ किसमे है और महारभ किसमें है ? तब आपको मिल के और खादी के वस्त्रो का अन्तर प्रतीत हो जायेगा। खादी पहिनने के कारण आज आपको कुछ असुविधा भी उठानी पड़ती हो तो भी परवाह मत करो। आखिर तो यह अल्पारभी ही परमात्मा

पत्र देने का विचार किया और इसके लिए पेरिस से एक सुन्दर सदूक बनवाकर मँगवाया। उसमे रखकर गाधीजो को मानपत्र दिया जाना था। सदूक बहुत सुन्दर था, लेकिन जिसके हृदय मे गर्भभाव होता है वह दूसरो के पाप को ही अपना पाप मानता है। बेटा जब रोगी होता है तो बाप भी इसके लिए अपना अभाग्य समझता है। साधारण लोग अपने बेटे को ही बेटा मानते हैं, लेकिन जिसकी भावना विशाल और 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की होती है, वह दूसरे के पापो के लिए भी अपने को उत्तरदायी समझता है।

गाधीजी ने राजकोट मे ही शिक्षा पाई थी और वही पर साधुमार्गी जैन महात्मा बेचरजी स्वामी के समक्ष मदिरा, मास और परस्त्री सेवन का त्याग किया था। गाधीजी ने इन प्रतिज्ञाओ का बडी दृढता के साथ पालन किया। अनेक प्रकार के कष्ट झेलकर भी उन्होने अपनी प्रतिज्ञाओ को निबाहा।

मेरे सबध मे कहा जाता है कि मैं दूसरा त्याग करने-कराने के लिए तो बहुत कहता हू मगर लीलोत्तरी (वनस्पति), जमीकन्द आदि के त्याग के लिए कम कहता हू। पूज्य श्रीश्रीलालजी महाराज इसके सबध मे बहुत कहा करते थे। मेरे विषय मे ऐसा कहा जाता है किन्तु आज जिस तरह के बडे-बडे पाप फूट निकले हैं, वैसे पहले नही थे। ऐसी दशा मे पहले बडे पाप का त्याग कराया जाये या छोटे पाप का? इस समय जमीकन्द त्यागने का उपदेश दूँ या चर्बी लगे मिल के वस्त्रो के त्याग का उपदेश दूँ? पहले

पत्र देने का विचार किया और इसके लिए पेरिस से एक सुन्दर सदूक बनवाकर मँगवाया। उसमे रखकर गाधीजी को मानपत्र दिया जाना था। सदूक बहुत सुन्दर था, लेकिन जिसके हृदय मे गर्हभाव होता है वह दूसरो के पाप को ही अपना पाप मानता है। बेटा जब रोगी होता है तो बाप भी इसके लिए अपना अभाग्य समझता है। साधारण लोग अपने बेटे को ही बेटा मानते हैं, लेकिन जिसकी भावना विशाल और 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की होती है, वह दूसरे के पापो के लिए भी अपने को उत्तरदायी समझता है।

गाधीजी ने राजकोट मे ही शिक्षा पाई थी और वही पर साधुमार्गी जैन महात्मा बेचरजी स्वामी के समक्ष मदिरा, मास और परस्त्री सेवन का त्याग किया था। गाधीजी ने इन प्रतिज्ञाओ का बडी दृढता के साथ पालन किया। अनेक प्रकार के कष्ट झेलकर भी उन्होने अपनी प्रतिज्ञाओ को निबाहा।

मेरे सबध मे कहा जाता है कि मैं दूसरा त्याग करने-कराने के लिए तो बहुत कहता हू मगर लीलोत्तरी (वनस्पति), जमीकन्द आदि के त्याग के लिए कम कहता हू। पूज्य श्रीश्रीलालजी महाराज इसके सबध मे बहुत कहा करते थे। मेरे विषय मे ऐसा कहा जाता है किन्तु आज जिस तरह के बडे-बडे पाप फूट निकले हैं, वैसे पहले नही थे। ऐसी दशा मे पहले बडे पाप का त्याग कराया जाये या छोटे पाप का ? इस समय जमीकन्द त्यागने का उपदेश दूँ या चर्बी लगे मिल के वस्त्रो के त्याग का उपदेश दूँ ? पहले

ज्यादा गरीव वनना चाहता हूं। ऐसी स्थिति में मेरा और तुम्हारा मेल कैसे बैठ सकता है ?

आज के अधिकाश श्रीमान् श्रीमताई के ढोग में फस-कर गरीवो की ओर ध्यान नही देते और न दुखियों की सहायता करते हैं। मगर ऐसा करके वे अपने लिए ही सकट को आमन्त्रित कर रहे हैं। अगर श्रीमान् और गरीब के बीच की दीवाल इसी प्रकार चौडी बनी रही तो वह दिन दूर नही जव 'वोल्शेविज्म' आ जायगा। बनेडा मे पूज्य श्रीलालजी महाराज ने कहा था कि गरीबो पर दया करो। उनकी उपेक्षा मत करो। ऐसा न किया तो वोल्शे-विज्म आ धमकेगा। उस दशा मे आप श्रीमत कहलाने वालो को संकट मे पडना पड़ेगा। गरीब आपसे प्रश्न करेंगे— यह धन कहा से लाये हो ? तुम्हारी तिजोरियो में जो धन भरा है वह हम गरीबों से ही तुम्हारे पास पहुंचा है। वस हो गया। अब हम गरीब और तुम श्रीमत नही रह सकते। हम सब समान होकर ही रहेगे। इस प्रकार आज जिन गरीबों की उपेक्षा की जा रही है, वही गरीब आपकी श्रीमताई खत्म कर देंगे। इसके विपरीत अगर आप श्रीम-ताई के ढोग मे न पडकर गरीवो की रक्षा करेंगे तो गरीव अपने प्राण देकर भी आपकी रक्षा करेंगे।

इसलिए मैं कहता हूं कि गरीवो की सहायता के लिए खादी को अपनाना सीखो। गरीबी की रक्षा करने पर ही आपकी श्रीमताई टिक सकती है। अतएव अपनी भलाई के उद्देश्य से भी आपको गरीवो की भलाई करनी चाहिए। मेरी इच्छा है कि आपको सद्वुद्धि प्राप्त हो और

ज्यादा गरीब बनना चाहता हूं। ऐसी स्थिति में मेरा और तुम्हारा मेल कैसे बैठ सकता है ?

आज के अधिकाश श्रीमान् श्रीमताई के ढोग में फसकर गरीबो की ओर ध्यान नही देते और न दुखियों की सहायता करते हैं। मगर ऐसा करके वे अपने लिए ही सकट को आमन्त्रित कर रहे हैं। अगर श्रीमान् और गरीब के बीच की दीवाल इसी प्रकार चौडी बनी रही तो वह दिन दूर नही जब 'बोल्शेविज्म' आ जायगा। बनेडा मे पूज्य श्रीलालजी महाराज ने कहा था कि गरीबो पर दया करो। उनकी उपेक्षा मत करो। ऐसा न किया तो बोल्शेविज्म आ धमकेगा। उस दशा मे आप श्रीमत कहलाने वालो को संकट मे पडना पड़ेगा। गरीब आपसे प्रश्न करेंगे—यह धन कहा से लाये हो ? तुम्हारी तिजोरियो में जो धन भरा है वह हम गरीबों से ही तुम्हारे पास पहुंचा है। बस हो गया। अब हम गरीब और तुम श्रीमत नही रह सकते। हम सब समान होकर ही रहेगे। इस प्रकार आज जिन गरीबों की उपेक्षा की जा रही है, वही गरीब आपकी श्रीमताई खत्म कर देंगे। इसके विपरीत अगर आप श्रीमताई के ढोग मे न पडकर गरीबो की रक्षा करेंगे तो गरीब अपने प्राण देकर भी आपकी रक्षा करेंगे।

इसलिए मैं कहता हूं कि गरीबो की सहायता के लिए खादी को अपनाना सीखो। गरीबी की रक्षा करने पर ही आपकी श्रीमताई टिक सकती है। अतएव अपनी भलाई के उद्देश्य से भी आपको गरीबो की भलाई करनी चाहिए। मेरी इच्छा है कि आपको सद्बुद्धि प्राप्त हो और

१ : अन्त्यजोद्धार और जैनधर्म

ठक्कर बापा अन्त्यजोद्धार का जो कार्य कर रहे हैं वह जैनधर्म के सिद्धान्तों से प्रतिकूल नही है बल्कि जैन-धर्म के अनुकूल है। उत्तराध्ययन सूत्र मे कहा है

सोवागकुल संभूओ गुणुत्तरधरो मुणी।
हरिएसबलो णाम आसी भिक्खू जिइन्दिओ '।

भगवान् महावीर ने कहा है कि चांडालकुल मे उत्पन्न, उत्तम गुणो को धारण करने वाले, जितेन्द्रिय हरिकेश बल नामक मुनि हुए हैं।

इस गाथा से स्पष्ट है कि जैन शास्त्र के अनुसार चाडाल भी जैनधर्म मे दीक्षित हो सकते हैं और वे उत्तम गुणो के धारक और जितेन्द्रिय मुनि भी हो सकते हैं। इस प्रकार जैनधर्म के समीप मनुष्यमात्र समान है। जैनधर्म जाति-पाति का कोई भी अनुचित पक्षपात नही करता। जैनधर्म की शीतल छाया मे प्रत्येक मनुष्य को शान्तिलाभ करने का अधिकार है, चाहे वह नीच समझे जाने वाले कुल मे उत्पन्न हुआ हो, चाहे उच्च माने जाने वाले कुल मे। वास्तव मे कोई मनुष्य ऐसा हो ही नही सकता, जिससे घृणा की जाये या जिसे छूने से छूत लग जाये।

भारत का यह दुर्भाग्य है कि यहां के लोग अपने

१ : अन्त्यजोद्धार और जैनधर्म

ठक्कर वापा अन्त्यजोद्धार का जो कार्य कर रहे हैं वह जैनधर्म के सिद्धान्तों से प्रतिकूल नही है बल्कि जैन-धर्म के अनुकूल है। उत्तराध्ययन सूत्र मे कहा है

सोवागकुल संभूओ गुणुत्तरधरो मुणी।
हरिएसबलो णाम आसी भिक्खू जिइन्दिओ'।

भगवान् महावीर ने कहा है कि चांडालकुल मे उत्पन्न, उत्तम गुणो को धारण करने वाले, जितेन्द्रिय हरिकेश बल नामक मुनि हुए हैं।

इस गाथा से स्पष्ट है कि जैन शास्त्र के अनुसार चाडाल भी जैनधर्म मे दीक्षित हो सकते हैं और वे उत्तम गुणो के धारक और जितेन्द्रिय मुनि भी हो सकते हैं। इस प्रकार जैनधर्म के समीप मनुष्यमात्र समान है। जैनधर्म जाति-पाति का कोई भी अनुचित पक्षपात नही करता। जैनधर्म की शीतल छाया मे प्रत्येक मनुष्य को शान्तिलाभ करने का अधिकार है, चाहे वह नीच समझे जाने वाले कुल मे उत्पन्न हुआ हो, चाहे उच्च माने जाने वाले कुल मे। वास्तव मे कोई मनुष्य ऐसा हो ही नही सकता, जिससे घृणा की जाये या जिसे छूने से छूत लग जाये।

भारत का यह दुर्भाग्य है कि यहां के लोग अपने

विरुद्ध उन्होने उपदेश दिया था और जातिगत अधिकारों का निषेध किया था । मगर भगवान् महावीर का अनुयायी जैनसघ अपनी मौलिक और वास्तविक मान्यताओं से हटता गया और अपने बहुसख्यक पडोसियो से प्रभावित होता गया । धीरे-धीरे ऐसा समय आ गया कि उसकी मान्यता सिर्फ शास्त्रो मे रह गई और उसका व्यवहार वैसा ही बन गया जैसा कि सर्वसाधारण बहुसख्यक जनता का था । लेकिन अब जैनसमाज भी हरिजनो के विषय मे सचेत हुआ है । जैनसमाज को सोचना चाहिए कि हरिकेशी मुनि चाण्डाल कुल मे उत्पन्न होकर भी अनुत्तर धर्म का पालन करने वाले हुए हैं। ऐसा स्वय भगवान् ने कहा है । इस प्रकार चाण्डाल कुल से किसी प्रकार का परहेज नही किया गया है । फिर आप इतना परहेज क्यो करते हैं ? जो लोग आपकी सेवा कर रहे हैं उन्हे आप क्यो भूल रहे हैं ? उनके प्रति जघन्य व्यवहार क्यो करते हैं ? जब चाण्डाल कुल मे उत्पन्न होने वाले अनुत्तर धर्म का पालन कर सकते हैं तब और क्या कमी रह गई जिसके कारण उनसे घृणा की जाती है ? जैनसमाज मे छूतछात का भाव मौलिक नही है । यह दूसरो के ससर्ग से और कुछ-कुछ अज्ञान के कारण आ गया है । किसी भी जैनशास्त्र मे ऐसा उल्लेख नही मिल सकता कि अमुक जाति के मनुष्य को छू लेने से कोई भ्रष्ट हो जाता है ।

इस प्रसग पर कोई हरिजनो मे रही हुई खराबियो की बात कह सकता है । मैं स्वीकार करता हू कि उनमे कई बुराइयां भी पाई जाती हैं । मगर ससार मे कौन-सी ऐसी जाति है जो दूध को धुली हो ? किस जाति मे

विरुद्ध उन्होने उपदेश दिया था और जातिगत अधिकारों का निषेध किया था। मगर भगवान् महावीर का अनुयायी जैनसघ अपनी मौलिक और वास्तविक मान्यताओं से हटता गया और अपने वहुसख्यक पडोसियो से प्रभावित होता गया। धीरे-धीरे ऐसा समय आ गया कि उसकी मान्यता सिर्फ शास्त्रो मे रह गई और उसका व्यवहार वैसा ही वन गया जैसा कि सर्वसाधारण वहुसख्यक जनता का था। लेकिन अव जैनसमाज भी हरिजनो के विपय मे सचेत हुआ है। जैनसमाज को सोचना चाहिए कि हरिकेशी मुनि चाण्डाल कुल मे उत्पन्न होकर भी अनुत्तर धर्म का पालन करने वाले हुए हैं ' ऐसा स्वय भगवान् ने कहा है। इस प्रकार चाण्डाल कुल से किसी प्रकार का परहेज नही किया गया है। फिर आप इतना परहेज क्यो करते हैं? जो लोग आपकी सेवा कर रहे हें उन्हे आप क्यो भूल रहे हैं? उनके प्रति जघन्य व्यवहार क्यो करते हैं? जव चाण्डाल कुल मे उत्पन्न होने वाले अनुत्तर धर्म का पालन कर सकते हैं तव और क्या कमी रह गई जिसके कारण उनसे घृणा की जाती है? जैनसमाज मे छूतछात का भाव मौलिक नही है। यह दूसरो के ससर्ग से और कुछ-कुछ अज्ञान के कारण आ गया है। किसी भी जैनशास्त्र मे ऐसा उल्लेख नही मिल सकता कि अमुक जाति के मनुष्य को छू लेने से कोई भ्रष्ट हो जाता है।

इस प्रसग पर कोई हरिजनो मे रही हुई खराबियो की वात कह सकता है। मैं स्वीकार करता हू कि उनमे कई बुराइयां भी पाई जाती हैं। मगर ससार मे कौन-सी ऐसी जाति है जो दूध को धुली हो? किस जाति मे

इस प्रकार कहकर उन्होने ब्राह्मणो को भी सच्चे यज्ञ का उपदेश दिया है।

यज्ञ का अर्थ आग में घी होमना ही नही है। वास्तविक यज्ञ तो वही है जिसका उपदेश हरिकेशी मुनि ने दिया है। आग में घी होमना आदि तो यज्ञ के नाम पर घोटाला चला था और जब यह घोटाला चला था तभीहरिकेशी मुनि ने ब्राह्मणो को सच्चे यज्ञ का उपदेश दिया था। गीता मे भी कहा है—

द्रव्ययज्ञास्तपोयज्ञा योगयज्ञास्तथाऽपरे ।
स्वाध्यायज्ञानयज्ञाश्च यतयः सशितव्रताः ॥

गीता में कहा है कि अगर तुम्हारे पास द्रव्य है तो द्रव्य का यज्ञ करो। अर्थात् द्रव्य को 'इदम् न मम' कहकर त्याग दो। द्रव्य न हो तो तपयज्ञ करो तप करके उसे अपने लिए न रखो, किन्तु 'इदम् न मम' कहकर उसका भी यज्ञ कर दो। अगर तप को अपने लिए रखोगे तो तपोमद हो जायेगा और उससे आत्मा का पतन ही होगा। अगर तप नही है और योग है तो योग का यज्ञ करो। अगर योग को अपने लिए रखोगे तो लोगो को चमत्कार दिखलाने मे लग जाओगे, जिससे गिरोगे ही, उठोगे नही। अगर स्वाध्याय करते हो तो उसका भी यज्ञ कर दो। अगर तुम्हारे पास ज्ञान है तो ज्ञान का भी यज्ञ कर दो। स्वाध्याय और ज्ञान का अभिमान मत करो। ससार के कल्याण मे इन सब को होम दो।

हरिकेशी मुनि कहते हैं कि यति लोग ऐसा ही यज्ञ

इस प्रकार कहकर उन्होने ब्राह्मणो को भी सच्चे यज्ञ का उपदेश दिया है।

यज्ञ का अर्थ आग में घी होमना ही नही है। वास्तविक यज्ञ तो वही है जिसका उपदेश हरिकेशी मुनि ने दिया है। आग में घी होमना आदि तो यज्ञ के नाम पर घोटाला चला था और जब यह घोटाला चला था तभीहरिकेशो मुनि ने ब्राह्मणो को सच्चे यज्ञ का उपदेश दिया था। गीता मे भी कहा है—

द्रव्ययज्ञास्तपोयज्ञा योगयज्ञास्तथाऽपरे ।
स्वाध्यायज्ञानयज्ञाश्च यतयः सशितव्रताः ॥

गीता में कहा है कि अगर तुम्हारे पास द्रव्य है तो द्रव्य का यज्ञ करो। अर्थात् द्रव्य को 'इदम् न मम' कहकर त्याग दो। द्रव्य न हो तो तपयज्ञ करो तप करके उसे अपने लिए न रखो, किन्तु 'इदम् न मम' कहकर उसका भी यज्ञ कर दो। अगर तप को अपने लिए रखोगे तो तपोमद हो जायेगा और उससे आत्मा का पतन ही होगा। अगर तप नही है और योग है तो योग का यज्ञ करो। अगर योग को अपने लिए रखोगे तो लोगो को चमत्कार दिखलाने मे लग जाओगे, जिससे गिरोगे ही, उठोगे नही। अगर स्वाध्याय करते हो तो उसका भी यज्ञ कर दो। अगर तुम्हारे पास ज्ञान है तो ज्ञान का भी यज्ञ कर दो। स्वाध्याय और ज्ञान का अभिमान मत करो। ससार के कल्याण मे इन सब को होम दो।

हरिकेशी मुनि कहते हैं कि यति लोग ऐसा ही यज्ञ

के अनुरूप ही है।×

४-१०-३७
जामनगर

× श्री अमृतलाल ठक्कर और श्रीमती राजेश्वरी नेहरू के आगमन के अवसर पर दिया हुआ पूज्यश्री का संक्षिप्त भाषण।

के अनुरूप ही है।×

४–१०–३७
जामनगर

× श्री अमृतलाल ठक्कर और श्रीमती राजेश्वरी नेहरू के आगमन के अवसर पर दिया हुआ पूज्यश्री का संक्षिप्त भाषण।

करता था। उस पर यह कैसा विश्वास था ? और इस विश्वास का कारण यही है कि हरिजन लोग एकनिष्ठा से सेवा करते हैं। इसलिए भ्रातृभाव रखकर उन्हें अपना मानना चाहिए और उन्हें धर्म की शिक्षा देनी चाहिए। बस, इतना ही कहकर मैं बैठने की इजाजत चाहता हूं।

करता था। उस पर यह कैसा विश्वास था? और इस विश्वास का कारण यही है कि हरिजन लोग एकनिष्ठा से सेवा करते हैं। इसलिए भ्रातृभाव रखकर उन्हें अपना मानना चाहिए और उन्हें धर्म की शिक्षा देनी चाहिए। बस, इतना ही कहकर मैं बैठने की इजाजत चाहता हूं।

सकते हैं। इन दु:खों का विनाश करने के लिए परमात्मा से प्रार्थना करनी चाहिए कि—'हे प्रभो ! मेरी बुद्धि मे ऐसी प्रेरणा, ऐसी जागृति हो कि मैं यथार्थ तत्त्व को जानने लगूं।' इस प्रकार सच्चे अन्तःकरण से परमात्मा की प्रार्थना करने से बुद्धि मे ऐसी शक्ति आ जायेगी कि वह यथार्थ तत्त्व को जान सकेगी और जब बुद्धि यथार्थ तत्त्व को जानने लगेगी तब सभी प्रकार के दुःख और ताप मिट जाएंगे।

परमात्मा की प्रार्थना मे कितनी और कैसी शक्ति है तथा प्रार्थना करने से किस प्रकार दु:खों का विनाश होता है, इस विषय मे इस प्रार्थना में कहा गया है—

> खलदल प्रबल दुष्ट अति दारुण जो चौतरफ करे घेरो,
> तदपि कृपा तुम्हारी प्रभुजी अरियन होय प्रगटे चेरो॥

हे प्रभो ! तराजू के एक पलड़े मे ससार के समस्त दु:ख रखे जायें और दूसरे पलड़े मे तेरी कृपा रखी जाये तो तेरी कृपा का पलडा ही भारी होगा। एक पलड़े मे ससार के समस्त शत्रुओं को रखा जाये और दूसरे मे तेरी कृपा रखी जाये तो शत्रुओं का पलड़ा ही हल्का रहेगा और तेरी कृपा का पलडा भारी ठहरेगा। तेरी कृपा होने पर शत्र लोग शत्रुता त्याग कर मित्र वन जाएंगे। उनमे मेरे प्रति शत्रुता ही न रहेगी। प्रभो ! कोई शूर पुरुष अपनी शूरता के वल से अपने शत्रुओ को अगर झुका भी ले तो शत्रु अपने शरीर से ही झुकेंगे। शूर पुरुष उनके अन्त करण को नही झुका सकता। लेकिन तेरी कृपा होने पर वे अन्त करण से नम जाएंगे। जिन्हे मैं अपनी भौतिक शक्ति से नमाता हूं वे आज नम भी सकते है किन्तु कल

सकते हैं। इन दु खों का विनाश करने के लिए परमात्मा से प्रार्थना करनी चाहिए कि—'हे प्रभो ! मेरी बुद्धि मे ऐसी प्रेरणा, ऐसी जागृति हो कि मैं यथार्थ तत्त्व को जानने लगूं।' इस प्रकार सच्चे अन्तःकरण से परमात्मा की प्रार्थना करने से बुद्धि मे ऐसी शक्ति आ जायेगी कि वह यथार्थ तत्त्व को जान सकेगी और जब बुद्धि यथार्थ तत्त्व को जानने लगेगी तब सभी प्रकार के दुःख और ताप मिट जाएंगे।

परमात्मा की प्रार्थना मे कितनी और कैसी शक्ति है तथा प्रार्थना करने से किस प्रकार दु.खों का विनाश होता है, इस विषय मे इस प्रार्थना में कहा गया है—

खलदल प्रवल दुष्ट अति दारुण जो चौतरफ करे घेरो,
तदपि कृपा तुम्हारी प्रभुजी अरियन होय प्रगटे चेरो॥

हे प्रभो ! तराजू के एक पलडे मे ससार के समस्त दु ख रखे जायें और दूसरे पलडे मे तेरी कृपा रखी जाये तो तेरी कृपा का पलडा ही भारी होगा। एक पलडे मे ससार के समस्त शत्रुओं को रखा जाये और दूसरे मे तेरी कृपा रखी जाये तो शत्रुओं का पलड़ा ही हल्का रहेगा और तेरी कृपा का पलडा भारी ठहरेगा। तेरी कृपा होने पर शत्र लोग शत्रुता त्याग कर मित्र वन जाएंगे। उनमे मेरे प्रति शत्रुता ही न रहेगी। प्रभो ! कोई शूर पुरुष अपनी शूरता के वल से अपने शत्रुओ को अगर झुका भी ले तो शत्रु अपने शरीर से ही झुकेंगे। शूर पुरुप उनके अन्त करण को नही झुका सकता। लेकिन तेरी कृपा होने पर वे अन्त करण से नम जाएंगे। जिन्हे मैं अपनी भौतिक शक्ति से नमाता हूं वे आज नम भी सकते है किन्तु कल

परमात्मा की प्रार्थना सत्य है, इसलिए वह सक्रिय होनी चाहिए। परमात्मा की प्रार्थना सत्य किस प्रकार है और उसमे कैसी शक्ति रही हुई है, यह बताने के लिए इसी प्रार्थना मे कहा गया है -

खलदल प्रवल दुष्ट अति दारुण जो चौतरफ करे घेरो।
तदपि कृपा तुम्हारी प्रभुजी अरियन होय प्रकटै चेरो॥

प्रार्थना मे ऐसी शक्ति तो है लेकिन उस शक्ति का पता तभी लगता है जब प्रार्थना सक्रिय हो। मान लीजिये मणि पास होने से अग्नि शान्त हो गई। यद्यपि यह नही दीखता कि मणि ने आग को किस प्रकार शान्त किया है ? फिर भी आग के शान्त हो जाने से यह तो जाना ही जाता है कि मणि मे आग को शान्त करने की शक्ति मौजूद है। इसी प्रकार प्रार्थना मे भी शत्रुओ को मित्र बना देने की शक्ति विद्यमान है। मगर उस शक्ति पर विश्वास हो तभी उसका पता लगता है। वास्तव मे प्रार्थना मे ऐसी शक्ति तो है लेकिन लोगो को उस शक्ति पर भरोसा नही है। अगर आप परमात्मा की प्रार्थना का चमत्कार देखना चाहते हैं तो प्रार्थना में अटल विश्वास उत्पन्न कीजिए। विश्वासपूर्वक अन्तःकरण से प्रार्थना करने पर किसी भी प्रकार का दु.ख या उपद्रव नही हो सकता और अगर प्रार्थना करने पर भी दु ख या उपद्रव हो तो समझना चाहिये कि अभी मेरे अन्त करण मे प्रार्थना पर सम्पूर्ण विश्वास नही हुआ है। परमात्मा की प्रार्थना करने पर किसी भी प्रकार का दुःख नही हो सकता, यह बात सिद्ध करने के लिए अनेकों उदाहरण दिये जा सकते हैं। दूसरो

परमात्मा की प्रार्थना सत्य है, इसलिए वह सक्रिय होनी चाहिए। परमात्मा की प्रार्थना सत्य किस प्रकार है और उसमे कैसी शक्ति रही हुई है, यह बताने के लिए इसी प्रार्थना मे कहा गया है -

खलदल प्रबल दुष्ट अति दारुण जो चौतरफ करे घेरो।
तदपि कृपा तुम्हारी प्रभुजी अरियन होय प्रकटै चेरो।।

प्रार्थना मे ऐसी शक्ति तो है लेकिन उस शक्ति का पता तभी लगता है जब प्रार्थना सक्रिय हो। मान लीजिये मणि पास होने से अग्नि शान्त हो गई। यद्यपि यह नही दीखता कि मणि ने आग को किस प्रकार शान्त किया है ? फिर भी आग के शान्त हो जाने से यह तो जाना ही जाता है कि मणि मे आग को शान्त करने की शक्ति मौजूद है। इसी प्रकार प्रार्थना मे भी शत्रुओ को मित्र बना देने की शक्ति विद्यमान है। मगर उस शक्ति पर विश्वास हो तभी उसका पता लगता है। वास्तव मे प्रार्थना मे ऐसी शक्ति तो है लेकिन लोगो को उस शक्ति पर भरोसा नही है। अगर आप परमात्मा की प्रार्थना का चमत्कार देखना चाहते हैं तो प्रार्थना में अटल विश्वास उत्पन्न कीजिए। विश्वासपूर्वक अन्तःकरण से प्रार्थना करने पर किसी भी प्रकार का दु.ख या उपद्रव नही हो सकता और अगर प्रार्थना करने पर भी दु ख या उपद्रव हो तो समझना चाहिये कि अभी मेरे अन्त करण मे प्रार्थना पर सम्पूर्ण विश्वास नही हुआ है। परमात्मा की प्रार्थना करने पर किसी भी प्रकार का दुःख नही हो सकता, यह बात सिद्ध करने के लिए अनेकों उदाहरण दिये जा सकते हैं। दूसरो

इस प्रश्न का उत्तर ज्ञानी यो देते हैं कि बड का वडा वृक्ष देखकर आप यह मानते हैं कि इस वृक्ष को लगे अधिक काल हो गया है, इसी से यह इतना वडा हो गया है। इसी प्रकार छोटे वृक्ष को देखकर यह मानते हैं कि अभी इसमे होने वाली क्रिया के लिए काल बाकी है। यही बात परमात्मा की प्रार्थना के विषय मे भी समझना चाहिए कि परमात्मा की प्राथना से हमे शक्ति नही मिल रही है तो इसका कारण यही है कि अभी क्रिया करने का काल बाकी है। अतएव निराश होने की आवश्यकता नही बल्कि अधिक तत्परता के साथ क्रिया करते जाना चाहिए और काललब्धि का सहारा लेना चाहिए। जिस प्रकार काल-लब्धि का सहारा लेकर क्रिया करते जाने पर वड का छोटा वृक्ष भी वडा हो जाता है, उसी प्रकार धैर्य रखकर परमात्मा की प्रार्थना करते रहने से क्रिया का परिपाक होने पर फल की प्राप्ति होगी ही। निराश मत होओ; क्रिया किये जाओ और सावद्य योग से वचते रहो। सावद्य योग परमात्मा की प्रार्थना के फल को कलुपित कर देता है।

सावद्य योग किसे समझना चाहिए ? इस विषय में कहा गया है—

> कम्ममवज्ज ज गरहिय ति कोहाइणो व चत्तारि।
> सह तेहि जो उ जोगो पच्चक्खाण भवइ तस्स ॥

इस गाथा मे सावद्य योग की व्याख्या की गई है। इसका आशय यह है कि निन्दनीय कर्म को सावद्य कहते हैं अथवा क्रोध, मान, माया और लोभ को भी सावद्य योग कहते हैं। क्योकि समस्त निन्दनीय कर्म क्रोध आदि के

इस प्रश्न का उत्तर ज्ञानी यो देते हैं कि बड का वडा वृक्ष देखकर आप यह मानते हैं कि इस वृक्ष को लगे अधिक काल हो गया है, इसी से यह इतना बडा हो गया है। इसी प्रकार छोटे वृक्ष को देखकर यह मानते हैं कि अभी इसमे होने वाली क्रिया के लिए काल बाकी है। यही बात परमात्मा की प्रार्थना के विषय मे भी समझना चाहिए कि परमात्मा की प्राथना से हमे शक्ति नही मिल रही है तो इसका कारण यही है कि अभी क्रिया करने का काल बाकी है। अतएव निराश होने की आवश्यकता नही बल्कि अधिक तत्परता के साथ क्रिया करते जाना चाहिए और काललब्धि का सहारा लेना चाहिए। जिस प्रकार काल-लब्धि का सहारा लेकर क्रिया करते जाने पर बड का छोटा वृक्ष भी बडा हो जाता है, उसी प्रकार धैर्य रखकर परमात्मा की प्रार्थना करते रहने से क्रिया का परिपाक होने पर फल की प्राप्ति होगी ही। निराश मत होओ; क्रिया किये जाओ और सावद्य योग से बचते रहो। सावद्य योग परमात्मा की प्रार्थना के फल को कलुपित कर देता है।

सावद्य योग किसे समझना चाहिए ? इस विषय में कहा गया है—

कम्ममवज्ज ज गरहिय ति कोहाइणो व चत्तारि।
सह तेहि जो उ जोगो पच्चक्खाण भवइ तस्स ॥

इस गाथा मे सावद्य योग की व्याख्या की गई है। इसका आशय यह है कि निन्दनीय कर्म को सावद्य कहते हैं अथवा क्रोध, मान, माया और लोभ को भी सावद्य योग कहते हैं। क्योकि समस्त निन्दनीय कर्म क्रोध आदि के

कार्यों को निन्दित कर्म माना गया है। इसी प्रकार के कार्यों को सावज्य कर्म भी कहते हैं।

ससार मे जितने भी पाप होते है, क्रोध, मान, माया और लोभ से होते हैं। इसीलिए इन कारणो मे कार्य का उपचार करके इन्हे भी सावद्य कर्म माना गया है और इन कारणो के अधीन होकर किये गये कार्य भी सावद्य हैं।

आज पिछली रात मे, एक बात मेरे ध्यान मे आई। वह बात मैं आप लोगो के सामने प्रकट करता हूं, क्योकि आपका और मेरा आत्मा समान ही है और जो वस्तु मेरी आत्मा के लिए लाभप्रद हो सकती है, वही आपकी आत्मा के लिए भी लाभप्रद हो सकती है। संभव है उस बात को मेरी आत्मा न अपना सके और आपकी आत्मा अपना ले। यह विचार कर वह बात मैं आपके समक्ष कहता हूं। भक्तो के शब्दो मे ही वह बात कहता हूं—

हे प्रभु ! कौन जतन भ्रम भागै।
देखत सुनत विचारत यह मन,
निज स्वभाव नही त्यागै ॥ हे प्रभु० ॥

हे प्रभो ! मेरे मन का स्वभाव किस प्रकार बदला जा सकता है ? वह सभी कुछ देखता है, सुनता है, विचारता है, लेकिन अपना स्वभाव नही छोड़ता। मैंने बहुत ग्रन्थ देखे, बहुत सत्सग किया, बहुत भक्ति, ज्ञान, वैराग्य आदि किया लेकिन मेरे मन का स्वभाव तो यही है कि या तो मेरी प्रशसा हो या मुझे कुछ मिले ! भले ही मैं कभी किसी से बाहरी वस्तु न मागू, लेकिन यह लालसा तो मेरे मन में बनी ही रहती है कि लोग मुझे भला कहे।

कार्यों को निन्दित कर्म माना गया है। इसी प्रकार के कार्यों को सावर्ज्य कर्म भी कहते हैं।

ससार मे जितने भी पाप होते है, क्रोध, मान, माया और लोभ से होते हैं। इसीलिए इन कारणो मे कार्य का उपचार करके इन्हे भी सावद्य कर्म माना गया है और इन कारणो के अधीन होकर किये गये कार्य भी सावद्य हैं।

आज पिछली रात मे, एक वात मेरे ध्यान मे आई। वह बात मैं आप लोगो के सामने प्रकट करता हूं, क्योकि आपका और मेरा आत्मा समान ही है और जो वस्तु मेरी आत्मा के लिए लाभप्रद हो सकती है, वही आपकी आत्मा के लिए भी लाभप्रद हो सकती है। संभव है उस वात को मेरी आत्मा न अपना सके और आपकी आत्मा अपना ले। यह विचार कर वह वात मैं आपके समक्ष कहता हूं। भक्तो के शब्दो मे ही वह वात कहता हूं—

हे प्रभु ! कौन जतन भ्रम भागै।
देखत सुनत विचारत यह मन,
निज स्वभाव नही त्यागै॥ हे प्रभु०॥

हे प्रभो ! मेरे मन का स्वभाव किस प्रकार वदला जा सकता है ? वह सभी कुछ देखता है, सुनता है, विचारता है, लेकिन अपना स्वभाव नही छोड़ता। मैंने वहुत ग्रन्थ देखे, वहुत सत्सग किया, वहुत भक्ति, ज्ञान, वैराग्य आदि किया लेकिन मेरे मन का स्वभाव तो यही है कि या तो मेरी प्रशसा हो या मुझे कुछ मिले ! भले ही मैं कभी किसी से वाहरी वस्तु न मागूँ, लेकिन यह लालसा तो मेरे मन में वनी ही रहती है कि लोग मुझे भला कहे।

युधिष्ठिर शर्मिन्दा होकर बोले—आप मुझे महाराज न कहिए, पौत्र ही कहिए।

भीष्म—जिस पद को प्राप्त करने के लिए अठारह अक्षौहिणी सेना का सहार हुआ है, जिस पद के लिए अनगिनत स्त्रिया विधवा हुई है और अनेक बालक अनाथ हो गये हैं तथा जिस पद के लिए कुल का सहार हुआ है, वह पद प्राप्त करने के पश्चात् आपको 'महाराज' क्यो न कहा जाये ?

युधिष्ठिर—पितामह, मैं इस पाप के दबाव से ही आपके पास आया हू। मुझे जो राजमुकुट प्राप्त हुआ है, उसमे शूल ही शूल जान पडते हैं। वह मुझे ऐसा चुभता है जैसे शूलो का बना हुआ हो। मैंने महल की अटारी पर चढकर देखा तो राजमुकुट और भी अधिक सुइयो से भरा हुआ जान पडा। जो मेदिनी वीरों से भरी थी, आज वह सुनसान दीख पड़ती है। यह देखकर सिर का मुकुट हृदय मे शूल-सा चुभने लगा। मैं यही सोच रहा हू कि इस मुकुट के पाने के लिए कितना पाप हुआ हैं और कितना सावद्य योग करना पडा है ?

युधिष्ठिर के कथन पर से आप अपने सबध मे विचार कीजिए। आपके सिर पर जो पगडी है, उसके लिए किस-किस तरह के पाप होते हैं ? अपने शरीर का रक्त-मास बढाने के लिए दूसरो को किस प्रकार के दुःख दिये जाते हैं ?

युधिष्ठिर का कथन सुनकर भीष्म पितामह ने सोचा—युधिष्ठिर घबरा गया है। इस समय इसे धैर्य देने की

युधिष्ठिर शर्मिन्दा होकर बोले—आप मुझे महाराज न कहिए, पौत्र ही कहिए ।

भीष्म—जिस पद को प्राप्त करने के लिए अठारह अक्षौहिणी सेना का संहार हुआ है, जिस पद के लिए अनगिनत स्त्रियां विधवा हुई है और अनेक बालक अनाथ हो गये हैं तथा जिस पद के लिए कुल का संहार हुआ है, वह पद प्राप्त करने के पश्चात् आपको 'महाराज' क्यो न कहा जाये ?

युधिष्ठिर—पितामह, मैं इस पाप के दबाव से ही आपके पास आया हू । मुझे जो राजमुकुट प्राप्त हुआ है, उसमे शूल ही शूल जान पडते हैं । वह मुझे ऐसा चुभता है जैसे शूलो का बना हुआ हो । मैंने महल की अटारी पर चढकर देखा तो राजमुकुट और भी अधिक सुइयो से भरा हुआ जान पडा । जो मेदिनी वीरों से भरी थी, आज वह सुनसान दीख पड़ती है । यह देखकर सिर का मुकुट हृदय मे शूल-सा चुभने लगा । मैं यही सोच रहा हू कि इस मुकुट के पाने के लिए कितना पाप हुआ है और कितना सावद्य योग करना पडा है ?

युधिष्ठिर के कथन पर से आप अपने सबध मे विचार कीजिए । आपके सिर पर जो पगडी है, उसके लिए किस-किस तरह के पाप होते हैं ? अपने शरीर का रक्त-मास बढाने के लिए दूसरो को किस प्रकार के दुख दिये जाते हैं ?

युधिष्ठिर का कथन सुनकर भीष्म पितामह ने सोचा—युधिष्ठिर घबरा गया है । इस समय इसे धैर्य देने की

मिली था। इसी से तुम विजयी हुए हो। दुर्योधन का पाप तुम्हारी विजय और उसके विनाश का कारण बना है। ऐसी दशा मे तुम्हें किसी प्रकार का खेद नही करना चाहिए।

युधिष्ठिर ने कहा— पितामह, यह तो ठीक है। लेकिन युद्ध के कारण जो वैर बध गया है, वह तो मेरे सिर पर ही रहा न ! जिन लोगो के घर वाले मारे गये हैं, उनका वैर मेरे और दुर्योधन के प्रति बध गया है। दुर्योधन तो मर गया है और मरे हुए से वैर नही भजाया जाता। वैर का बदला तो जीते हुए से ही लिया जाता है। अतएव दोनो पक्ष के लोग मुझे ही वैरी समझेगे। वे यही मानेगे कि हमारे पिता, पुत्र, भाई या पति की मृत्यु का कारण यही युधिष्ठिर है। यह वैर की स्मृति मुझे कष्ट पहुचा रही है और इसी कारण यह मुकुट मुझे कांटो की तरह चुभता है।

भीष्म पितामह—ठीक है, पर इस वैर को तुम अपनी विशिष्ट वृत्ति के द्वारा शान्त कर डालो। ऐसा करोगे तभी तो तुम राजा हो।

युधिष्ठिर—पितामह, इसीलिए मैं आपके पास आया हू। इस सम्बन्ध मे आप मुझे उचित उपदेश दीजिए। मैं जानना चाहता हू कि जो वैर वध गया है वह क्या मिटाया जा सकता है ? किस प्रकार उसका शमन किया जा सकता है ?

भीष्म – ससार मे ऐसी कोई आग नही है जो सुलगे और बुझे नही। इसी प्रकार जब वैर बधता है तो मिट भी सकता है। लेकिन दूसरे के वैर को शान्त करने के

मिली था। इसी से तुम विजयी हुए हो। दुर्योधन का पाप तुम्हारी विजय और उसके विनाश का कारण बना है। ऐसी दशा मे तुम्हें किसी प्रकार का खेद नही करना चाहिए।

युधिष्ठिर ने कहा– पितामह, यह तो ठीक है। लेकिन युद्ध के कारण जो वैर बध गया है, वह तो मेरे सिर पर ही रहा न ! जिन लोगो के घर वाले मारे गये हैं, उनका वैर मेरे और दुर्योधन के प्रति बध गया है। दुर्योधन तो मर गया है और मरे हुए से वैर नही भजाया जाता। वैर का बदला तो जीते हुए से ही लिया जाता है। अतएव दोनो पक्ष के लोग मुझे ही वैरी समझगे। वे यही मानेगे कि हमारे पिता, पुत्र, भाई या पति की मृत्यु का कारण यही युधिष्ठिर है। यह वैर की स्मृति मुझे कष्ट पहुचा रही है और इसी कारण यह मुकुट मुझे कांटो की तरह चुभता है।

भीष्म पितामह—ठीक है, पर इस वैर को तुम अपनी विशिष्ट वृत्ति के द्वारा शान्त कर डालो। ऐसा करोगे तभी तो तुम राजा हो।

युधिष्ठिर—पितामह, इसीलिए मैं आपके पास आया हू। इस सम्वन्ध मे आप मुझे उचित उपदेश दीजिए। मैं जानना चाहता हू कि जो वैर वध गया है वह क्या मिटाया जा सकता है ? किस प्रकार उसका शमन किया जा सकता है ?

भीष्म– ससार मे ऐसी कोई आग नही है जो सुलगे और बुझे नही। इसी प्रकार जव वैर वधता है तो मिट भी सकता है। लेकिन दूसरे के वैर को शान्त करने के

वह ढोंग मात्र रह जायेगा और इस प्रकार तुम दुर्योधन से भी ज्यादा बुरे हो जाओगे। अतएव सत्ता मिलने पर सज्जनता को मत भूलना, उसकी रक्षा करना। स्मरण रखना कि सत्ता जाये तो भले जाये, मगर सज्जनता न जाये।

सिर जावे तो जावे मेरा सत्य धर्म नहीं जावे।
सत्य की खातिर रामचन्द्रजी वन-फल खावे ॥ मेरा० ॥

राम को राज्य मिलने की तैयारी थी लेकिन पिता का सत्य जाने लगा तब राम ने सोचा—जिस राज्य से पिता का सत्य जाता है, उस राज्य को लात मारना ही उचित है। ऐसा सोचकर वे राज्य का परित्याग कर वन को चल दिये। राम राजपुत्र थे और जन्म से सुखों में ही पले थे। फिर भी सत्य की रक्षा के लिए उन्होने वन-फल खाना स्वीकार किया किन्तु अपनी सज्जनता नही जाने दी।

कामदेव और अरणक पर कैसी विपत्ति आई थी? अरणक के जहाज को पिशाचरूपधारी देव उंगली पर उठाकर आकाश में ले गया था। वह कहता था कि तू सत्य को छोड दे अन्यथा मैं तेरे जहाज को यही से छोडता हूं। तेरा जहाज समुद्र के अथाह जल मे विलीन हो जायेगा और तुझे प्राणो से भी हाथ धोना पड़ेगा। अरणक जहाज के व्यापार के लिए ही गया था। ऐसी स्थिति में उसे जहाज का प्रिय लगना स्वाभाविक ही था। अरणक सोच सकता था कि 'धर्म छोडा' कह देने मात्र से क्या बिगड़ जाता है! इतना कह देने से अगर जहाज बचता है तो बचा ही लेना चाहिए। मगर नही, अरणक ने ऐसा विचार नही किया। वह सोचता था कि मेरी सज्जनता पहले है,

वह ढोंग मात्र रह जायेगा और इस प्रकार तुम दुर्योधन से भी ज्यादा बुरे हो जाओगे। अतएव सत्ता मिलने पर सज्जनता को मत भूलना, उसकी रक्षा करना। स्मरण रखना कि सत्ता जाये तो भले जाये, मगर सज्जनता न जाये।

> सिर जावे तो जावे मेरा सत्य धर्म नहीं जावे।
> सत्य की खातिर रामचन्द्रजी वन-फल खावें ॥ मेरा० ॥

राम को राज्य मिलने की तैयारी थी लेकिन पिता का सत्य जाने लगा तब राम ने सोचा—जिस राज्य से पिता का सत्य जाता है, उस राज्य को लात मारना ही उचित है। ऐसा सोचकर वे राज्य का परित्याग कर वन को चल दिये। राम राजपुत्र थे और जन्म से सुखों में ही पले थे। फिर भी सत्य की रक्षा के लिए उन्होंने वन-फल खाना स्वीकार किया किन्तु अपनी सज्जनता नहीं जाने दी।

कामदेव और अरणक पर कैसी विपत्ति आई थी? अरणक के जहाज को पिशाचरूपधारी देव उंगली पर उठाकर आकाश में ले गया था। वह कहता था कि तू सत्य को छोड दे अन्यथा मैं तेरे जहाज को यहीं से छोडता हूं। तेरा जहाज समुद्र के अथाह जल मे विलीन हो जायेगा और तुझे प्राणों से भी हाथ धोना पड़ेगा। अरणक जहाज के व्यापार के लिए ही गया था। ऐसी स्थिति में उसे जहाज का प्रिय लगना स्वाभाविक ही था। अरणक सोच सकता था कि 'धर्म छोडा' कह देने मात्र से क्या बिगड़ जाता है! इतना कह देने से अगर जहाज बचता है तो बचा ही लेना चाहिए। मगर नहीं, अरणक ने ऐसा विचार नहीं किया। वह सोचता था कि मेरी सज्जनता पहले है,

१२ : लघुता-प्रकाश

[पूज्यश्री की जयन्ती के उपलक्ष्य मे अनेक वक्ताओ ने प्रासंगिक भाषण दिये थे । उन सब भाषणों के पश्चात् पूज्यश्री का प्रवचन हुआ। उसी का आशय यहां दिया जा रहा है ।]

आप लोगों ने आज जो कुछ सुनाया है, उस पर विचार करते-करते, यहा बैठे-बैठे मुझे एक विचार आया है। उपनिषद् मे एक वाक्य आया है—

यानि अस्माकं सुचरितानि तानि त्वया पालनीयानि ।

गुरु अपने शिष्य से कहता है—हे शिष्य ! मुझ में जो सुचरित्र हो उसी का तू पालन करना । अगर मुझमे कोई बात प्रपच भरी जान पड़े तो उसे तू ग्रहण मत करना । जिस बात को तेरी आत्मा स्वीकार न करती हो उसे तू मत मानना । तू उसी को अंगीकार कर जो बात अच्छी हो ।

यही बात मैं आप लोगो से कहता हू । आप लोगो ने मेरी प्रशंसा मे जो कुछ कहा है वह मेरे लिए भाररूप है । वास्तव मे मुझे भाषा का भी पूर्ण ज्ञान नही है । गुरु-चरणों के प्रताप से विरासत मे मुझे जो कुछ प्राप्त हुआ है या जो कुछ मैं प्राप्त कर सका हूं वही आप लोगो को सुनाता हूं और उसी के द्वारा सबकी आत्मा को सन्तुष्ट

१२ : लघुता-प्रकाश

[पूज्यश्री की जयन्ती के उपलक्ष्य मे अनेक वक्ताओ ने प्रासंगिक भाषण दिये थे । उन सब भाषणों के पश्चात् पूज्यश्री का प्रवचन हुआ । उसी का आशय यहां दिया जा रहा है ।]

आप लोगों ने आज जो कुछ सुनाया है, उस पर विचार करते-करते, यहा बैठे-बैठे मुझे एक विचार आया है। उपनिषद् मे एक वाक्य आया है—

यानि अस्माकं सुचरितानि तानि त्वया पालनीयानि ।

गुरु अपने शिष्य से कहता है—हे शिष्य ! मुझ में जो सुचरित्र हो उसी का तू पालन करना । अगर मुझमे कोई बात प्रपच भरी जान पड़े तो उसे तू ग्रहण मत करना । जिस बात को तेरी आत्मा स्वीकार न करती हो उसे तू मत मानना । तू उसी को अंगीकार कर जो बात अच्छी हो ।

यही बात मैं आप लोगो से कहता हू । आप लोगो ने मेरी प्रशंसा मे जो कुछ कहा है वह मेरे लिए भाररूप है । वास्तव मे मुझे भाषा का भी पूर्ण ज्ञान नही है । गुरु-चरणों के प्रताप से विरासत मे मुझे जो कुछ प्राप्त हुआ है या जो कुछ मैं प्राप्त कर सका हूं वही आप लोगो को सुनाता हूं और उसी के द्वारा सबकी आत्मा को सन्तुष्ट

उसके सब बूंद मधुर नहीं होते और न उसकी प्रत्येक छलक में मोती होते हैं। इस कारण हे हंस, तू देख-देखकर मोती चुगना।

यही बात मैं आप से कहता हूं। आपके समक्ष मैं जो कुछ कहता हू, उसे आप विचार करने के बाद ग्रहण करना। मेरा कथन उचित हो तो ग्रहण करना। उचित न हो तो छोड़ देना। मैंने अपने गुरु से जो कुछ प्राप्त किया है, उसका भली-भाति पालन करने में अभी तक मुझे पूर्णता प्राप्त नहीं हुई है। मुझ मे अभी तक बहुत अपूर्णता है। मैं चाहता हू कि मेरी यह अपूर्णता मिट जाये। मैं परमात्मा से भी यही प्रार्थना करता हूं कि मेरी यह इच्छा पूर्ण हो।

जैसे हंस मोती चुगता है, उसी प्रकार आप मेरे कथन में से अच्छी-अच्छी बातें चुनकर ग्रहण करें। समुद्र मे लहरें बहुत आती हैं पर सभी लहरों में मोती नही आते। लेकिन मोती चुगने वाला हंस लहरों मे से मोती चुग ही लेता है। आप भी हंस की भाति विवेकबुद्धि प्राप्त करो और मोती के समान अच्छी बातों को स्वीकार कर लो और शेष का परित्याग कर दो। मैं भी हंस के समान बनना चाहता हूं। जैसे हंस दूध और पानी को पृथक् कर देता है और मोती को ही चुगता है, उसी प्रकार मैं भी अच्छी बातों को ही ग्रहण करना चाहता हूं।

हम साधुओं को मनुष्यों के परिचय मे बहुत आना पड़ता है। हमारा लक्ष्य यही होना चाहिए कि इन मनुष्यों मे से हम मोती जैसे सद्गुणों को ही ग्रहण करें। मोती

उसके सब बूंद मधुर नही होते और न उसकी प्रत्येक छलक में मोती होते हैं। इस कारण हे हस, तू देख-देख-कर मोती चुगना।

यही बात मैं आप से कहता हूं। आपके समक्ष मैं जो कुछ कहता हू, उसे आप विचार करने के बाद ग्रहण करना। मेरा कथन उचित हो तो ग्रहण करना। उचित न हो तो छोड़ देना। मैंने अपने गुरु से जो कुछ प्राप्त किया है, उसका भली-भाति पालन करने में अभी तक मुझे पूर्णता प्राप्त नही हुई है। मुझ मे अभी तक बहुत अपूर्णता है। मैं चाहता हू कि मेरी यह अपूर्णता मिट जाये। मैं परमात्मा से भी यही प्रार्थना करता हूं कि मेरी यह इच्छा पूर्ण हो।

जैसे हस मोती चुगता है, उसी प्रकार आप मेरे कथन में से अच्छी-अच्छी बातें चुनकर ग्रहण करें। समुद्र मे लहरें बहुत आती हैं पर सभी लहरों में मोती नही आते। लेकिन मोती चुगने वाला हस लहरों मे से मोती चुग ही लेता है। आप भी हंस की भाति विवेकबुद्धि प्राप्त करो और मोती के समान अच्छी वातों को स्वीकार कर लो और शेष का परित्याग कर दो। मैं भी हंस के समान वनना चाहता हूं। जैसे हंस दूध और पानी को पृथक् कर देता है और मोती को ही चुगता है, उसी प्रकार मैं भी अच्छी वातों को ही ग्रहण करना चाहता हूं।

हम साधुओं को मनुष्यों के परिचय मे बहुत आना पड़ता है। हमारा लक्ष्य यही होना चाहिए कि इन मनुष्यों मे से हम मोती जैसे सद्गुणों को ही ग्रहण करें! मोती

उसके सब बूंद मधुर नही होते और न उसकी प्रत्येक छलक में मोती होते हैं। इस कारण हे हस, तू देख-देख-कर मोती चुगना।

यही बात मैं आप से कहता हूं। आपके समक्ष मैं जो कुछ कहता हूं, उसे आप विचार करने के बाद ग्रहण करना। मेरा कथन उचित हो तो ग्रहण करना। उचित न हो तो छोड़ देना। मैंने अपने गुरु से जो कुछ प्राप्त किया है, उसका भली-भांति पालन करने मे अभी तक मुझे पूर्णता प्राप्त नही हुई है। मुझ मे अभी तक बहुत अपूर्णता है। मैं चाहता हू कि मेरी यह अपूर्णता मिट जाये। मैं परमात्मा से भी यही प्रार्थना करता हूं कि मेरी यह इच्छा पूर्ण हो।

जैसे हस मोती चुगता है, उसी प्रकार आप मेरे कथन में से अच्छी-अच्छी बातें चुनकर ग्रहण करें। समुद्र में लहरें वहुत आती हैं पर सभी लहरो में मोती नही आते। लेकिन मोती चुगने वाला हस लहरों मे से मोती चुग ही लेता है। आप भी हंस की भांति विवेकवुद्धि प्राप्त करो और मोती के समान अच्छी वातों को स्वीकार कर लो और शेप का परित्याग कर दो। मैं भी हस के समान वनना चाहता हूं। जैसे हंस दूव और पानी को पृथक् कर देता है और मोती को ही चुगता है, उसी प्रकार मैं भी अच्छी वातो को ही ग्रहण करना चाहता हूं।

हम साधुओं को मनुष्यो के परिचय में वहुत आना पडता है। हमारा लक्ष्य यही होना चाहिए कि इन मनुष्यों मे से हम मोती जैसे सद्गुणों को ही ग्रहण करें! मोती

उसके सब बूंद मधुर नही होते और न उसकी प्रत्येक छलक में मोती होते हैं। इस कारण हे हस, तू देख-देखकर मोती चुगना।

यही बात मैं आप से कहता हूं। आपके समक्ष मैं जो कुछ कहता हूं, उसे आप विचार करने के बाद ग्रहण करना। मेरा कथन उचित हो तो ग्रहण करना। उचित न हो तो छोड़ देना। मैंने अपने गुरु से जो कुछ प्राप्त किया है, उसका भली-भांति पालन करने मे अभी तक मुझे पूर्णता प्राप्त नही हुई है। मुझ मे अभी तक बहुत अपूर्णता है। मैं चाहता हू कि मेरी यह अपूर्णता मिट जाये। मैं परमात्मा से भी यही प्रार्थना करता हूं कि मेरी यह इच्छा पूर्ण हो।

जैसे हस मोती चुगता है, उसी प्रकार आप मेरे कथन में से अच्छी-अच्छी बातें चुनकर ग्रहण करें। समुद्र में लहरें बहुत आती हैं पर सभी लहरो में मोती नही आते। लेकिन मोती चुगने वाला हस लहरों मे से मोती चुग ही लेता है। आप भी हंस की भांति विवेकबुद्धि प्राप्त करो और मोती के समान अच्छी बातों को स्वीकार कर लो और शेष का परित्याग कर दो। मैं भी हस के समान बनना चाहता हूं। जैसे हंस दूध और पानी को पृथक् कर देता है और मोती को ही चुगता है, उसी प्रकार मैं भी अच्छी बातो को ही ग्रहण करना चाहता हूं।

हम साधुओं को मनुष्यो के परिचय में बहुत आना पडता है। हमारा लक्ष्य यही होना चाहिए कि इन मनुष्यों मे से हम मोती जैसे सद्गुणों को ही ग्रहण करें! मोती

भी उनका हृदय शुद्ध है । इसी से वह कहती है कि ऋषभ को मैं ही क्यों न बुला लाऊँ ।

माता का कथन भरत ने भी सुना । उन्होंने सोचा— माता इस समय हर्ष की चरम सीमा मे है । भगवान् घर पर नही पधारेंगे, यह कहकर उनके हर्ष को एकाएक आघात पहुचाना उचित नही है । गीता मे कहा है—

न बुद्धिभेद जनयेदज्ञानां कर्मसगिनाम् ।

अर्थात्—जो अच्छे काम में लगा है, उसकी बुद्धि मे गडबड पैदा कर देना उचित नही है ।

एवन्ताकुमार से गौतम स्वामी क्या अपना हाथ नही छुडा सकते थे ? लेकिन ऐसा करके उन्होंने एवन्ताकुमार के हर्ष का छेदन नही किया ।

पूज्य श्रीलाल जी महाराज कहा करते थे—मेरा विवाह हुआ और मैं वापस लौटा तब तपस्वी पन्नालालजी महाराज वहाँ विराजमान थे । उन्हे देखकर मुझे बहुत प्रसन्नता हुई और मैं उनके पैर पकडने के लिए दौडा । मुझे यह भी याद नही रहा कि मेरे पास सगठा (सचित्त-स्पर्श) होने योग्य कोई वस्तु है । मुझे महाराज का पैर पकडने के लिए जाते देखकर लोग कहने लगे—सगठा होगा, सगठा होगा । हल्ला-सा मच गया । लेकिन तपस्वीजी महाराज ने कहा— इस तरह किसी के हर्ष का छेदन नही करना चाहिए । इसे हर्ष मे इस बात का ध्यान नही रहा ।

भरत ने माता से कहा— माताजी, हम लोग भगवान् के पास चलते ही हैं । फिर जैसा आपको उचित लगे, करना ।

भी उनका हृदय शुद्ध है । इसी से वह कहती है कि ऋषभ को मैं ही क्यों न बुला लाऊँ ।

माता का कथन भरत ने भी सुना । उन्होंने सोचा– माता इस समय हर्ष की चरम सीमा मे है । भगवान् घर पर नही पधारेंगे, यह कहकर उनके हर्ष को एकाएक आघात पहुचाना उचित नही है । गीता मे कहा है–

न बुद्धिभेद जनयेदज्ञानां कर्मसगिनाम् ।

अर्थात्–जो अच्छे काम में लगा है, उसकी बुद्धि मे गडबड पैदा कर देना उचित नही है ।

एवन्ताकुमार से गौतम स्वामी क्या अपना हाथ नही छुडा सकते थे ? लेकिन ऐसा करके उन्होंने एवन्ताकुमार के हर्ष का छेदन नही किया ।

पूज्य श्रीलाल जी महाराज कहा करते थे–मेरा विवाह हुआ और मैं वापस लौटा तब तपस्वी पन्नालालजी महाराज वहाँ विराजमान थे । उन्हे देखकर मुझे बहुत प्रसन्नता हुई और मैं उनके पैर पकडने के लिए दौडा । मुझे यह भी याद नही रहा कि मेरे पास सगठा (सचित्त-स्पर्श) होने योग्य कोई वस्तु है । मुझे महाराज का पैर पकडने के लिए जाते देखकर लोग कहने लगे–सगठा होगा, सगठा होगा । हल्ला-सा मच गया । लेकिन तपस्वीजी महाराज ने कहा– इस तरह किसी के हर्ष का छेदन नही करना चाहिए । इसे हर्ष मे इस बात का ध्यान नही रहा ।

भरत ने माता से कहा– माताजी, हम लोग भगवान् के पास चलते ही हैं । फिर जैसा आपको उचित लगे, करना ।

पर क्या अभिमान !

माता को भगवान् के पास पहुँचने की उतावल थी। वह सोच रही थी कि मैं कब ऋषभ को देखूं ! इस कारण कहने लगी– 'यह हाथी चलता क्यो नही है ! क्या आज इसे खाने को नही मिला ?'

आखिर जिस हाथी पर माता सवार थी वह भगवान् के समीप जा पहुँचा। भरत ने माता से कहा–माता, देखो, भगवान् वे सामने विराजमान है।

माता–कहाँ ? मुझे तो नही दिखाई दिया।

भरत ने भगवान् की ओर उगली बताकर कहा–देखो, वे रहे !

भगवान् को देखकर माता कहने लगी– ऋषभ ऐसा वैभवशाली हो गया है ! अपने वैभव मे वह मुझे भी भूल गया है क्या ? इसमे आश्चर्य ही क्या है ! अरे इसके सामने इन्द्र, इन्द्रानी, देव और देवियाँ हाथ जोडे है। ऐसी सम्पदा पाकर मुझे भूल जाना कोई आश्चर्य की बात नही है। देखो न, मुझे देखकर वह न सामने आया और न उठा ही !

भरत वास्तविक परिस्थिति से परिचित थे। वे अपनी भोली दादी को क्या उत्तर देते ? उनकी समझ मे ही नही आता था कि मैं इन्हे किस प्रकार समझाऊँ ? समझा देने मे माता के दिल को चोट लगने की आशका भी थी। अतएव उन्होंने टालते हुए कहा–माताजी, आप उन्ही से पूछना कि वे क्यो नही उठे ?

माता कहने लगी–ऋषभ ! तू ऐश्वर्य पाकर मुझे भूल

पर क्या अभिमान !

माता को भगवान् के पास पहुँचने की उतावल थी। वह सोच रही थी कि मैं कब ऋषभ को देखूं ! इस कारण कहने लगी– 'यह हाथी चलता क्यो नही है ! क्या आज इसे खाने को नही मिला ?'

आखिर जिस हाथी पर माता सवार थी वह भगवान् के समीप जा पहुँचा। भरत ने माता से कहा—माता, देखो, भगवान् वे सामने विराजमान है।

माता—कहाँ ? मुझे तो नही दिखाई दिया।

भरत ने भगवान् की ओर उगली बताकर कहा—देखो, वे रहे !

भगवान् को देखकर माता कहने लगी– ऋषभ ऐसा वैभवशाली हो गया है ! अपने वैभव मे वह मुझे भी भूल गया है क्या ? इसमे आश्चर्य ही क्या है ! अरे इसके सामने इन्द्र, इन्द्रानी, देव और देवियाँ हाथ जोडे है। ऐसी सम्पदा पाकर मुझे भूल जाना कोई आश्चर्य की बात नही है। देखो न, मुझे देखकर वह न सामने आया और न उठा ही !

भरत वास्तविक परिस्थिति से परिचित थे। वे अपनी भोली दादी को क्या उत्तर देते ? उनकी समझ मे ही नही आता था कि मैं इन्हे किस प्रकार समझाऊँ ? समझा देने मे माता के दिल को चोट लगने की आशका भी थी। अतएव उन्होंने टालते हुए कहा—माताजी, आप उन्ही से पूछना कि वे क्यो नही उठे ?

माता कहने लगी—ऋषभ ! तू ऐश्वर्य पाकर मुझे भूल

ही शाश्वत है । ससार की किसी भी वस्तु के साथ आत्मा का लगाव नही है । यह सब कल्पना का ही खेल है। आत्मा सब से भिन्न है । जब मैं यह बात जान गई हू तो ससार के जजाल मे क्यो पड़ू ?

इस प्रकार कहकर माता ने अपने आत्मा को राग से पृथक् किया । आत्मा के लिए अप्रशस्त राग को जीतना उतना कठिन नही, जितना प्रशस्त राग को जीतना कठिन होता है । मगर माता ने प्रशस्त राग को भी जीतकर दिखा दिया कि इस राग को भी जीतना चाहिए ।

माता ने आत्मा को राग से खीचकर मोह नष्ट कर दिया। बारहवे गुणस्थान की अवस्था प्राप्त की । फिर तेरहवें गुणस्णान की स्थिति भोगकर सिद्धि प्राप्त की ।

माता को देखकर भरत सोचने लगे—माता यह क्या कर रही हैं । उन्होंने प्रकट में कहा—माता, आप अपने पुत्र को देखिए न । लेकिन माता तो सिद्ध, बुद्ध और मुक्त हो चुकी थी । माता का शरीर देखकर वे जान गये कि माता ने सिद्धि प्राप्त कर ली है । वह सोचने लगे—जिस प्रयोजन के लिए मानव शरोर को प्राप्ति होती है, माता का वह प्रयोजन पूर्ण हो गया । माता का उद्देश्य सफल हो गया । जिस काम के लिए दीपक हाथ मे लिया जाता है वह काम हो जाने के वाद दीपक त्याग दिया जाता है। इसी प्रकार महापुरुष काम होने तक ही व्यवहार रखते है और काम हो जाने पर व्यवहार त्याग दते हैं । माता ने भी शरीर का काम हो जाने पर शरीर त्याग दिया है ।

मोह के कारण भरत और बाहुबली माता के लिए

ही शाश्वत है । ससार की किसी भी वस्तु के साथ आत्मा का लगाव नही है । यह सब कल्पना का ही खेल है। ग्रात्मा सब से भिन्न है । जब मैं यह बात जान गई हू तो ससार के जजाल मे क्यो पडू ?

इस प्रकार कहकर माता ने अपने आत्मा को राग से पृथक् किया । आत्मा के लिए अप्रशस्त राग को जीतना उतना कठिन नही, जितना प्रशस्त राग को जीतना कठिन होता है । मगर माता ने प्रशस्त राग को भी जीतकर दिखा दिया कि इस राग को भी जीतना चाहिए ।

माता ने ग्रात्मा को राग से खीचकर मोह नष्ट कर दिया। बारहवे गुणस्थान की अवस्था प्राप्त की । फिर तेर-हवें गुणस्णान की स्थिति भोगकर सिद्धि प्राप्त की ।

माता को देखकर भरत सोचने लगे—माता यह क्या कर रही हैं । उन्होंने प्रकट में कहा—माता, आप अपने पुत्र को देखिए न । लेकिन माता तो सिद्ध, बुद्ध और मुक्त हो चुकी थी । माता का शरीर देखकर वे जान गये कि माता ने सिद्धि प्राप्त कर ली है । वह सोचने लगे—जिस प्रयोजन के लिए मानव शरीर को प्राप्ति होती है, माता का वह प्रयोजन पूर्ण हो गया । माता का उद्देश्य सफल हो गया । जिस काम के लिए दीपक हाथ मे लिया जाता है वह काम हो जाने के बाद दीपक त्याग दिया जाता है। इसी प्रकार महापुरुष काम होने तक ही व्यवहार रखते है और काम हो जाने पर व्यवहार त्याग दते हैं । माता ने भी शरीर का काम हो जाने पर शरीर त्याग दिया है ।

मोह के कारण भरत और बाहुबली माता के लिए